बिहारी : हृदय-भावना

जयमंगल त्रिपाठी
एम॰ ए॰ हिन्दी द्वितीय वर्ष

बिहारी : सौन्दर्य - भावना

जयमंगल त्रिपाठी

दो शब्द

पिछले वर्ष मध्यकालीन कविता का अध्ययन करते समय मैं सबसे अधिक बिहारी की सौन्दर्य दृष्टि से प्रभावित हुआ । कुछ ऐसा लगा कि इस कवि ने अपने युग की सौन्दर्य चेतना को न केवल काव्य अपितु संगीत, मूर्ति आदि विभिन्न ललित कलाओं के माध्यम से उरेहने की चेष्टा की है । बिहारी ने काव्यकला के साथ भले ही चमत्कारिक सम्बन्ध रखा हो, ऊहात्मक कल्पना के संस्पर्श से विलक्षण बनाया हो किन्तु भोगे हुए सौन्दर्य को अपने जीवन की सरस अनुभूतियों में साकार किया है । प्रस्तुत प्रबन्ध प्रस्तुत करने में यही मेरे लिए सबसे बड़ा आकर्षण था । आज अध्ययन करने के पश्चात् मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि अभिजात सौन्दर्य का ऐसा कुशल चितेरा कम से कम मध्यकालीन कवियों में कोई नहीं है ।

मेरा विषय 'बिहारी की सौन्दर्य भावना' सुन्दर है किन्तु इसकी 'सवी' को जब मैं लिखने बैठा तो मेरी स्थिति भी जगत् के कितने ही चतुर चितेरों की भांति हो गई । कारण स्पष्ट है, एक तो विषय अत्यन्त सूक्ष्म है और दूसरे सैद्धान्तिक दृष्टि से अत्यन्त जटिल । यही कारण है कि बिहारी की कला में बंधा हुआ यह सौन्दर्य मेरे लाख प्रयत्नों के बावजूद यत्र-तत्र बिखर गया है, धुंधला रह गया है और पकड़ में आकर अनकहा रह गया है । फिर भी, मुझे सन्तोष है कि इन तमाम अपराजेय परिस्थितियों के सीमित विस्तार में भी मैंने कुछ नई बात कहने की चेष्टा की है ।

जहां तक प्रबन्ध की रूपरेखा का सम्बन्ध है , पहला अध्याय 'सैद्धान्ति विवेचन' का है । तमाम मत-मतांतरों के पचड़े से बच कर कुछ विशिष्ट पौरवात्य एवं पाश्चात्य धारणाओं के आधार पर मैंने सौन्दर्य का विवेचन किया है । मेरे सैद्धान्तिक विवेचन की एक विशिष्टता यह है कि मैंने सौन्दर्य सम्बन्धी लक्षणों के

आधार पर कवि की सौन्दर्य-चेतना का विवेचन न कर, कवि की सौन्दर्य दृष्टि से अन्य सिद्धान्तों की परख की है , और विशेष विश्लेषण के लिए एक संतुलित दृष्टि और समन्वित सिद्धान्त को निर्धारित किया है । प्राय: इस तरह के प्रबंधों में जो औपचारिक विवेचन के स्तम्भ होते हैं जिनमें बार-बार के प्रयुक्त निष्कर्ष सजाए जाते हैं उन्हें मैंने जान-बूझ कर बचाया है । मैंने सार-सार कहने की चेष्टा की है और पोथे से बचता रहा हूं । आलोच्य कवि की शैली-संहिति के अनुसरण का मैंने भरसक प्रयत्न किया है । इसीलिए मेरी थीसिस वामन का आकार पा सकी है । अगले अध्यायों में भी मेरी यही दृष्टि और शैली रही है । अन्तिम अध्याय सौन्दर्य-निरूपण की दृष्टि से बिहारी के मूल्यांकन का है। वहां मैंने अपनी दृष्टि को निष्पक्ष रहने की चेष्टा की है । वैसे मेरा प्रभावित मन कुछ कम आकृष्ट नहीं रहा है । यही कारण है कि जहां बिहारी की उपलब्धियां उद्घाटित की गई हैं वहां उनकी सीमाओं का निदेश भी किया गया है । रीतिकालीन और छायावादी कविता के समानान्तर रखकर बिहारी की सौन्दर्य भावना की तुलनात्मक विवेचना की गई है ।

शेष चार अध्यायों में बिहारी के काव्य को साक्षी बनाकर प्रमुख आधारों पर उनकी सौन्दर्य-भावना का अध्ययन किया गया है । रूप-सौन्दर्य संबंधी दूसरे अध्याय में कवि द्वारा अंकित स्त्री और पुरुष दोनों के रूप-सौन्दर्य के साथ-साथ अनुभाव-संकेतित माधुर्य भंगिमाओं को मैंने उद्घाटित किया है । तीसरा अध्याय 'शील-सौन्दर्य' का है । भाव और कर्म दोनों की सुन्दरता का विवेचन है । बिहारी की मेरी दृष्टि से एक बहुत बड़ी विशिष्टता रूप-सम्मोहन से चमत्कृत युग-दृष्टि के समक्ष मानव की चिरंतन भाव-मधुरिमा को प्रस्तुत करने की है । चौथा अध्याय 'प्रकृति-सौन्दर्य' का है । इसमें कवि द्वारा विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत चित्रित प्रकृति की सुषमा का विवेचन किया गया है । 'कला-सौन्दर्य' पांचवें अध्याय में रखा गया है । कला-विवेचन की शास्त्रीय लीक को छोड़कर मैंने इस अध्याय में कवि के कलात्मक दृष्टिकोण का सहारा लिया है और कवि की विशुद्ध कलात्मक सुन्दरता को प्रस्तुत किया है ।

मैं अपने विद्वान गुरु एवं पटु निदेशक प्रो० सत्यनारायण जी त्रिपाठी, एम० ए० के अमूल्य अनुग्रहों के प्रति किन शब्दों में अपने हृदय का उद्‌गार प्रकट करूं? यदि उन्होंने अपने महत्वपूर्ण निदेशन के साथ साहस दे-दे कर मुझे निराश को उत्साहित एवं पथ पर प्रेरित न किया होता तो पता नहीं मेरी क्या दशा हुई होती। उनके प्रति में जो कुछ भी कहूंगा, वह बहुत थोड़ा होगा । उनके प्रति अपने हार्दिक उद्‌गारों को प्रकट करने के लिए मुझे शब्द नहीं मिल रहे हैं और मैं जो कुछ भी कहूंगा वह बहुत थोड़ा होगा ।

इस तरह के सुलझे और सुयोग्य निदेशन के बावजूद भी यदि आदरणीय पं० डा० गोपीनाथ जी तिवारी, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय की कृपा का संबल न मिला होता तो इतनी कम अवधि में मेरा यह लेखन-अनुष्ठान पूरा न हो पाया होता । मैं उनकी कृपा के लिए श्रद्धानत हूं, आभारी नहीं क्योंकि वह तो मेरी धृष्टता होगी ।

साथ ही अपने अन्य गुरुवरों और पं० इन्द्रासन त्रिपाठी साहित्याचार्य, श्री गिरीश तिवारी जी आदि गुरुजनों के प्रति भी श्रद्धानत हूं । प्रिय विन्दुप्रसाद को भी मेरास्नेह । भाई रामानन्द जी के प्रति भी मैं आभारी हूं । फिर अपने पूज्य गुरु एवं निदेशक प्रो० सत्यनारायण जी त्रिपाठी के प्रति पुन: मैं अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट कर रहा हूं ।

अस्तु !

जयमंगल त्रिपाठी

हिन्दी विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर, दि० ८ अप्रैल, १९६२ ई०

सं के त

इस प्रबन्ध में उद्धृत दोहों की संख्या
श्री जगन्नाथदास `रत्नाकर` द्वारा सम्पादित - `बिहारी-
रत्नाकर` की है ।

विषय - सूची

पृष्ठ

प्रथम अध्याय — सौन्दर्य - तत्व — १ - १६

अर्वाचीन - २ , वस्तुपरक मान्यता - ७ , अरस्तू - ८, विंकलमैन एवं लेसिंग - ८ , हीगार्थ - ८ , प्राइस एवं कूसान- ८ , गार्त्सवर्दी - ८ , रीकन - ८ , कौडवल - ८ , आत्मपरक मान्यतायें - १० ,समन्वयवादी दृष्टिकोण-१२ बिहारी की सौन्दर्य सम्बन्धी मान्यता - १३

द्वितीय अध्याय — रूप - सौन्दर्य — १७ - ५५

मुख - १७ , ओठ (अधर-ओष्ठ) - १८ , दन्तकांति-१९, कपोल - १९ , चिबुक - २० , उरोज - २० , कटि - २१, जांघ - २२ , नितम्ब - २२ , एड़ी - २२ , पैर की अंगुलियां - २३ , पद-तल लालिमा - २३ , पैर का गट्टा-२३, हाथ की अंगुलियां- २४ , अलक - २४ , नेत्र - २६ , आकारजनित सौन्दर्य - २६ , वर्ण-सौन्दर्य - २७ , श्यामता- २८ , आंसूपूर्ण नयन- ३० , अलस नयन सौन्दर्य - ३१ , चितवनि - ३१ , भौंह - ३२ , अलंकृत सौन्दर्य - ३३ , सामग्रियां-३४ हीरा मरी बेंदी - ३४ , सींक - ३४ , टीका - ३४ , नथ - ३५ , बेसर का मोती - ३५ , तरयौना - ३५ , उरवसी - ३५ ,मुक्तावली-३६ अंगूठी - ३६ ,गले का बन्द - ३६ , पैर के छल्ले- ३६ ,अनवट्टु-ताटंक-३६, बिछिया - ३७ , ध्वनि - ३७ , मुरासा - ३७ , वस्त्र - ३८ , नीला अंचल - ३९ , अनुलेप आदि प्रसाधन - ४० , बेंदी - ४० , अंगराग - ४० , दिठौना-गोदना - ४०, महावर - ४० , केशर-४०, सुगन्धि - ४१ , शारीरिक गुण - ४१ , कान्ति - ४१ , द्युति-४२, शोभा - ४२ , लावण्य -४२, सुकुमारता - ४२ , यौवन छटा- ४३, विकास - ४३ , पारदर्शिकता - ४३ , मुद्राजनित सौन्दर्य - ४३, पुरुष-सौन्दर्य - ४६

पृष्ठ

अनुभावपरक सौन्दर्य - ५०
अनुभाव-सौन्दर्य - ५१ ,

तृतीय अध्याय — शील - सौन्दर्य — ५६ - ५९

चतुर्थ अध्याय — प्रकृति-सौन्दर्य — ६० - ६८

वर्ण-सौन्दर्य - ६२
भंगिमागत सौन्दर्य - ६२ , नादपरक सौन्दर्य - ६२,
गन्धपरक सौन्दर्य - ६२, स्पर्श की संवेदना - ६३,भावाक्षिप्त-
सौन्दर्य - ६३ , मानवीय सौन्दर्य- ६३ , अलंकारपरक सौन्दर्य-
६४, प्रतीकात्मक-सौन्दर्य- ६४ , अतीन्द्रिय-सौन्दर्य - ६४ ,
उद्देशात्मकता - ६४, वातावरणगत-सौन्दर्य - ६४ , मादक-
माधुर्य - ६५ , प्रभावपरक सौन्दर्य - ६६ , मानवीय-सौन्दर्य-
६७ , गति-सौन्दर्य - ६८ ।

पंचम अध्याय — कला - सौन्दर्य — ६९ - ७८

गठन-सौन्दर्य - ७१ , लय-सौन्दर्य - ७२ , प्रसंगानुरूप-
अनुरणन-नाद-सौन्दर्य - ७२ , जड़ता पर चेतना का आरोप-७३।
साम्य-सौन्दर्य - ७३,
वर्ण-साम्य - ७४, विरोधगत-सौन्दर्य - ७४ , वैसाम्य-सौन्दर्य-७५
संकेतात्मक सौन्दर्य - ७६ , अन्योक्ति - ७६ , पुनरावृत्ति - ७७,
वक्रोक्ति - ७७ , छन्द-सौन्दर्य - ७७ ,

षष्ठ अध्याय — उ प सं हा र — ७९ - ८२

सहायक ग्रंथों की सूची — ८३ - ८४

प्रथम अध्याय

सौन्दर्य-विवेचन

सौन्दर्य-विवेचन

सौन्दर्य एक अत्यन्त गहन तत्व है और उस पर सहज ही कुछ कह देना साधारण काम नहीं है । इस सम्बन्ध में प्राचीन काल से ही विद्वानों और चिंतकों ने प्रयत्न किया है और उसके स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है । यह केवल अपने यहां ही विचार की वस्तु नहीं रहा है, बल्कि पाश्चात्य मनीषियों ने भी इसपर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है । अत: स्वतन्त्र रूप से इस पर विचार करने के पहले विभिन्न विद्वानों के विचारों का अवलोकन कर लेना अधिक उपादेय होगा ।

भारतीय विचारधारा --

अंग प्रत्यंग कानो प: संनिवेशो यथोचितम्।
सुश्लिष्ट संधिवन्ध: स्यात्तत्सौंदर्य मितीर्यते।।[१]

भवेत्सौन्दर्य मंगानां सन्निवेशो यथोचितम्[२] ।

प्रियेषु सौभाग्य फला हि चारुता[३] ।
अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्व माकृति विशेषाणाम्[४] ।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः[५] ।

---

१. उज्ज्वलनील मणि(बम्बई,काव्य माला,६५), पृ० २७४
२. श्री हरिभक्ति रसामृत सिन्धु : (अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय,काशी),पृ० १६५
३. कालिदास - कुमारसम्भव
४. कालिदास - अभिज्ञान शाकुन्तलम् ,१।१८
५. माघविरचित शिशुपाल-वध

रमणीयार्थ प्रतिपादक: शव्द: काव्यम् । रमणीयता च लोकोत्तरा -ह्लाद जनक ज्ञान गोचरता। लोकोत्तरत्वं चाह्लादगतश्चमत्कारत्वा-पर पर्यायो नुभव साधिको जाति विशेष:[१]।

अर्वाचीन -- सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। योरपीय कला समीक्षा की यह एक बड़ी ऊंची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़झाले के सिवा और कुछ नहीं है। जैसे वीर कर्म से पृथक् वीरत्व कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक् सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं। कुछ रूपरंग की वस्तुएं ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हमें उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्त:सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। - - - - जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार-परिणति जितनी ही अधिक होगी उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जाएगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भीतर बाहर का भेद व्यर्थ है। जो भीतर है वही बाहर है[२]।

'ज्यों-ज्यों चित्त की वृत्ति शिथिल होगी त्यों-त्यों अपने स्वरूप का जो भीतर बाहर विद्यमान है, साक्षात्कार होगा। परन्तु द्वैत भावना एकदम दूर नहीं हो सकती। इसलिए अपना अन्तर्मुख होना बाह्य जगत की सूक्ष्मता के रूप में अनुभूत होगा। यह सूक्ष्मता की अनुभूति ही सौन्दर्य की अनुभूति है[३]'।

'कुछ ऐसे विषय हैं जिनको देखकर हृदय में रस का संचार होता है। - - - हम इन सबमें जो मनोहारिता पाते हैं उसको सौन्दर्य कहते हैं[४]'।

'उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं[५]'

---

१. पंडितराज जगन्नाथ - रसगंगाधर

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -- चिन्तामणि, भाग १, (सन् १९३९), पृ० २२४

३. दर्शन और जीवन, पृ० १८६

४. बाबू सम्पूर्णानन्द --चिद्विलास, पृ० २०६

५. जयशंकर प्रसाद - कामायनी (काम सर्ग)

'अकेली सुन्दरता कल्याणि , सकल ऐश्वर्यों की सन्धान'[१]

' वही प्रज्ञा का सत्य-स्वरूप हृदय में बनता प्रणय-अपार,
लोचनों में लावण्य - अनूप लोक सेवा में शिव अविकार;
स्वरों में ध्वनित मधुर,सुकुमार सत्य ही प्रेमोद्गार ;
दिव्य-सौन्दर्य ,स्नेह-साकार, भावनामय संसार ।'[२]

' सौन्दर्य की उत्पत्ति और उसके विकास का कारण यौन-व्यापार है'[३]।
'स्थूल या सूक्ष्म जगत में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है'[४]।

' स्वयं सौन्दर्य हृदय को परिष्कृत, पवित्र, कोमल और व्यापक बनाता है,यही उसकी उपयोगिता है'[५]।

'प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है'[६] ।

'सत्य सदा शिव होने पर भी विरूपाक्ष भी होता है और कल्पना का मन सुन्दरार्थ ही होता है'[७] ।

'विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी सौन्दर्य-विवेचना में सत्य और सौन्दर्य की एकता प्रतिपादित की है'[८] ।

---

१. पन्त -- ~~युगान्त~~ 'पल्लव',पृ० ५४
२. वही , पृ० ८७
३. पं० शदगुरुशरण अवस्थी, बुद्धितरंग , पृ० २३
४. हरिवंश सिंह, सौन्दर्य विज्ञान ,पृ० ५६-५७
५. 'सौन्दर्यानुभूति' नामक लेख (समालोचक का सौन्दर्य-शास्त्र विशेषांक),बाबूगुलाब राय।
६. सौन्दर्य की वस्तु सत्ता और सामाजिक विकास' नामक लेख, वही विशेषांक। डा०रामविलास शर्मा
७. साकेत ।
८. 'दिस इज़ द अल्टीमेट आब्जेक्ट आफ अवर एग्ज़िस्टेंस दैट वी मस्ट एवर नो दैट 'ब्यूटी इज़ ट्रुथ , ट्रुथ ब्यूटी' --टैगोर, साधना, पेज १४१

डा० भिखनलाल आत्रेय ने सौन्दर्य की अवस्था को योग कीसविकल्प समाधि की दशा कहा है[१]।

यहां तक तो प्राचीन और अर्वाचीन भारतीय विचारधारा को प्रस्तुत किया गया। अब आगे पाश्चात्य विचारकों की मान्यताओं को भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

विश्व ख्यात यूनानी दार्शनिक ~~क्वेटो~~ सौन्दर्य को शिवतत्व के प्रकाशन में सार्थक मानता है[२]।

विक्टर कूंजियां सौन्दर्य के सम्बन्ध में बहुत ऊंची धारणा रखता है और उसके मूल में ईश्वरीय सत्ता को मानता है और उसी में चरम सौन्दर्य का दर्शन करता है[३]।

लाक उस बाह्य के आकार में सौन्दर्य को मानता है जो आनन्द-दायक हो[४]।

नार्टन को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक एकता में सौन्दर्य का दर्शन होता है[५]।

---

१. इट इज़ ए स्टेट आफ कम्प्लीट रिपोज़ एण्ड इज़ वेरी मच एकिन टू एक्सटेसी आर सेविकल्पका समाधि ~~कक~~ आफ इंडियन योग-- बी०एच०यू० जर्नल, सिलवर जुबली, नवम्बर (१६४२), पेज ४४

२. दि प्रिंसिपुल आफ गुडनेस हैज़ रिझ्यूस्ड इटसेल्फ टु दि ला आफ ब्यूटी। फ़ार मीज़र एण्ड प्रापोरशन आलवेज़ पास इंटू ब्यूटी एण्ड ऐक्स--
संदर्भ -- ए हिस्ट्री आफ ऐस्थेटिक (बाई बरनार्ड बोसन क्वेट) १६३४, पं० ३३

३. दस दि अब्सोल्यूट बीयिंग व्हिच ~~कब स्लक्के~~ ऐट वन एण्ड दि सेम टाइम आब्सोल्यूट ~~क~~ यूनिटी एण्ड इनफिनिट वैनिटी, गाड इज़ नेसेस्सरिली दि सेम काज़, दि अल्टीमेट बेसिस, दि रियलाइज़्ड आइडियल आफ आल ब्यूटी--
संदर्भ -- दि प्रिंसिपुल्स आफ क्रिटिसिज़्म (बाई डब्ल्यू०बासिट वोर्सफोल्ड, पेज १२५

४. ब्यूटी कंसिस्ट्स आफ ए सर्टेन कम्पोज़ीशन आफ कलर एण्ड फिगर काज़िंग डेलाइट इन दि बिहोल्डर संदर्भ--डेव्सलर्स न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी।

५. ब्यूटी रेज़ल्ट्स फ्राम एडेप्टेशन टु ~~कक~~ अवर फेकल्टीज़ एण्ड ए परफेक्ट स्टेट आफ हेल्थ। फिज़िकल, मारल, एण्ड इंटेलेक्चुअल, संदर्भ-डेव्सटर्स न्यू इ० डिक्शनरी।

हीगेल के अनुसार पदार्थ में आत्मा का प्रकाशन ही सौन्दर्य है[१] ।

शेलिंग के अनुसार मानव के माध्यम से पूर्ण या दिव्य सत्ता की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है[२] ।

कांट निःस्वार्थ एवं निरपेक्ष रूप में सबको अनिवार्यतः आनन्दप्रदान करने वाले वस्तु को सान्दर्य सम्पन्न कहता है[३] ।

ह्यूमन ने सौन्दर्य को पूर्ण व्यक्तिपरक देखा है तथा उसकी अन्तःस्थिति स्वीकार की है[४] । प्रसिद्ध कलावादी फ्रंच (फ्रांसीसी) क्रोचे सौन्दर्य को एक अत्यन्त कल्पनामूलक, निरपेक्ष एवं आत्मपरक काल्पनिक सत्ता मानता है[५] । कीट्स सत्य मेंसौन्दर्य ही सौन्दर्य में सत्य का दर्शन करता है[६] ।

---

१. "व्यूटी इज़ दि शाइनिंग आफ दि आइडिया थ्रू मैटर", संदर्भ--टाल्सटायज़ "ह्वाट इज़ आर्ट, पेज १००

२. "व्यूटी इज़ दि स्प्रिचुअल मेकिंग इटसेल्फ नोन

३. "दैट इज़ व्युटीफुल ह्विच प्लीज़ेज़, ह्विच प्लीज़ेज आल, ह्विच प्लीज़ेज विथाउट इंटेरेस्ट एण्ड विथाउट ए कासेप्ट एंड प्लीज़ेज नेसेसिरिली"--वही, पे०६७

४. "व्यूटीइज़ नाट क्वालिटी इन थिंग्स देमसेल्वज़, इट एग्ज़िस्ट्स नियरली इन दि माइंड ह्विच कंटेम्प्लेट्स देम" ।

५. इट सीम्स नाऊ बोथ परमिज़िबुल एण्ड ऐडमिज़िबुल टु डिफाइन व्यूटी ऐज़ सक्सेसफुल एक्सप्रेशन, आर रादर ऐज़ एक्सप्रेशन एण्ड नथिंग मोर, बिकाज़ एक्सप्रेशन ह्वेन इट इज़ नाट सक्सेसफुल इज़ नाट एक्सप्रेशन"--डुगल्स ऐंसिली ऐस्थेटिक (१६२२), पेज ७६

. "दि व्युटीफुल इज़ नाट ब फिज़िकल फैक्ट, व्यूटी डज़ नाट बिलांग टू थिंग्स, इट बिलांग्स टु ह्यूमन ऐस्थेटिक ऐक्टिविटी, एण्ड दिस इज़ मेंटल आर स्प्रिचुअल फैक्ट"--विल्डन कार०, फिलासोफी आफ क्रोस, पे०१६१--संदर्भ--पं०बल्देव उपाध्यायाज़ भारतीय साहित्य-शास्त्र, पार्ट २, पे०४५३

६. "व्यूटी इज़ ट्रुथ, ट्रुथ व्यूटी - दैट इज़ आल यू नो आन अर्थ, एण्ड आल यू नीड टु नो -- कीट्स एस्से इन क्रिटिसिज़्म, पृ० ८३, सेकंड सेरीज़ बाई अर्नोल्ड ।

बिलझ्यूरेंट सौन्दर्य को शाश्वत चेतना के स्रोतसे सम्बद्ध करते हैं[१]।

काडवेल व प्लेखोनोव आदि लेखक सौन्दर्य को सामाजिक उपयोगिता के प्रसंग में ही देखते हैं[२]।

इन नाना रूपात्मक अनन्त विश्व में बाह्य रूप से तो वैषम्य ही दिखाई पड़ता है, लेकिन देश, काल और व्यक्तिगत वैभिन्य को भेदकर एक ऐसी अन्तवर्तिनी चेतना कीसूक्ष्म धारा सबमें समान रूप से प्रवाहित होती रहती है कि शाश्वत सत्यों के सम्बन्ध में युग-युग की विचारसरणियों में विषमता होते हुए भी प्राय: एकता परिलक्षित होती है । लेकिन कुछ बाते ऐसी भी होती हैं जिनके सम्बन्ध में समानता होते हुए भी कुछ न कुछ मतवैभिन्य बना ही रहता है । सौन्दर्य भी एक ऐसा

क्रमागत --

'ए थिंग आफ ब्यूटी इज़ ए ज्वाय फार एवर
इट्स टचनेस इन्क्रीज़ज़, इट विल नेवर
पास इंटू नथिंगनेस । कीट्स, एंडीमियन ।

१. आल जीनियस लाइक आल ब्यूटी एण्ड आल आर्ट, डेज़ायर इट्स पावर अल्टिमेटली फ्राम दि सेम रेज़रवायर आफ क्रियेटिव एनर्जी ह्विच रिन्यूज़ दि रेज़ परपेचुअल्टी एण्ड एचीव्ज़ दि इम्मारटैलिटी आफ लाइफ. --दि मैंशस आफ फिलासफी, पे० २६६

२. इफ. दोज़ ऐक्ट्स आफ इंडीवीजुअल आर मारल ह्विच ही परफार्म्स इरैसपेक्टिव आफ आल कांसिडरेशंस आफ सेल्फ-इंटरेस्ट । दिस स्टिल डज़नाट मीन दैट मारेल्टी हैज़ नो रिलेशन टु सोशल इंटरेस्ट । वन टु दि कन्ट्रैरी, सेल्फ-ऐब्नेगेशन आन दि इंडिवीडुअल हैज़ ए मीनिंग वनली इन सो फार ऐज़ इटइज़ यूज़फुल टु दि काइंड । फार दिस रीज़न दि टेन थेसिस, दैट दि ब्यूटिफुल इज़ दैट ह्विच प्लीज़ेज इन्डेपेन्डेन्टली आफ आल इन्टरेस्ट इज़ रांग- - - कांसिक्वेंटली दि इन्ज्वायमेंट आफ ए वर्क आफ आर्ट इज़ इन्ज्वायमेंट आफ दि डेपिक्शन ऐडवांटेजस टु दि काइंड, इन्डेपेंडेंटली आफ एनी कांशस कांसिडरेशन ह्वाटसोएवर आफ सच ऐडवांटेज--जी०वी० प्लेखोनोव--आर्ट एण्ड सोशल लाइफ (१९५३), पे० ११

ही तत्व है जिसके महत्व को तो सभी स्वीकार करते ह जिसको चेतना का उज्ज्वल वरदान समझते है और जिसकी रमणीय अरुणिम छाया मे सभी विश्राम चाहते हैं तथा उससे अनुप्राणित होते हैं। लेकिन साथ ही उसकी स्थिति के सम्बन्ध में मतभेद रखते हैं । पूर्व संकलित विचार-सूत्रों पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य अधिक स्पष्ट हो जायगा।

इन मान्यताओं में सूक्ष्मरूप मे प्रवेश करने पर हम देखते हैं कि कुछ विद्वान् उन्हें वस्तु में देखते हैं , कुछ उसे भावनागत मानते हैं और कुछ समन्वयात्मक दृष्टि रखते हैं । अत: हम इन्हे तीन वर्गों में रख सकते हैं --

१. वस्तुपरक मान्यता -- सुकरात , प्लेटो एवं अरस्तू के समय में तथा ३०० वर्ष पूर्व से आजतक एक निश्चित शास्त्रीय पद्धति पर सौन्दर्य के सम्बन्ध में विद्वानों ने विचार किया है । उनमें वस्तुवादी दृष्टि रखने वाले विद्वानों में निम्नलिखित मुख्य हैं --

सुकरात , अरस्तू , पियर कफियर , डिडेरा , रेनाल्ड्स , होगार्थ , वर्क , एलिशन , रिचर्ड प्राइस , जैफ्रे, हर्बर्ट स्पेंसर , प्रो० बेन, डा० सली, लेसिंग , डार्विन , शेन्सटन, केम , हैमिल्टन , गेरार्ड , और व्यूकर आदि। इन लोगों ने सौन्दर्य के सम्बन्ध मेंवस्तुवादी दृष्टिसे चिन्तन किया है और आंख , कान, नाक, जीभ और त्वचा : इन पंचेन्द्रियों को सुखद एवं आनन्दप्रद, वस्तु एवं व्यक्ति के गुण धर्मों को ही सौन्दर्य का आधार स्थिर किया गया है । परिणामत: इस वर्ग के विद्वानों ने सौन्दर्य को निम्नलिखित आत्मनिरपेक्ष बाह्य गुणधर्मों में माना है । वस्तु, दृश्य, व्यक्ति या परिस्थिति के रूप, रंग, आकार , व्यवस्थित-क्रम, नियमितता , एकान्विति, स्पष्टता (डिस्टिंक्टनेस), मसृणता (स्मूथनेस), स्निग्धता(साफ्टनेस), वर्णदीप्ति (ब्राइटनेस आफ् कलर्स (वैचित्र्य (वैनिटी), जटिलता (इंट्रीकेसी), शुद्धता (पासिटी), समात्रता (सिमेट्री), उपयोगिता (युटिलिटी), उदात्तता (सब्लिमिटी), सौकुमार्य या कोमलता (टेंडरनेस आर डेलिकेसी) , प्रतीकमयता (सिम्बोलिकनेस), सूक्ष्मता-अग्राह्यता

(एल्युज़ाइक्नेस) ,वास्तवत्ता (लाइफ.-लाइक्नेस), व्यंजकता (सज्जेस्टिवनेस), विरोध (कन्ट्रास्ट), अंग-अंगी सम्बन्ध (रिलेशंस आफ पार्ट्स विथ दि होल), माधुर्य (स्वीटनेस, ऐग्रियेबुलनेस), नवता (फ्रेशनेस), निश्चित विधान (डेफि.निट लिमिटेशन), संश्लिष्टता (कनेक्टेडनेस), संतुलन (बैलेंस) , सामंजस्य (हार्मोनी), औचित्य (रीज़नेबुलनेस आर प्रास्पेरिटी), समन्वय (सिन्थेसिस) , व अनुपात (प्रपोर्शन)।

सुकरात, पिथेगोरस एवं डार्विन के पहले के दार्शनिकों (वैज्ञानिकों) ने संगीत जैसी सूक्ष्म कला में भी नियमितता एवं व्यवस्था में सौन्दर्य देखा था ।

अरस्तु -- इसने समानता या (सुषमा) क्रमव्यवस्था , निश्चित विधान, अनुपात एवं अंग-अंगी के सुष्ठु सामंजस्य में सौन्दर्य देखा ।

विंकलमैन एवं लेसिंग-- इन लोगों ने बाह्य विधान एवं रूप (स्ट्रक्चर एण्ड फ.ार्म) में सौन्दर्य का दर्शन किया ।

होगार्थ -- इसको सौन्दर्य सम्मात्रा, स्पष्टता आयतन, दुरूहता , और वैचित्र्य परिलक्षित हुआ ।

प्राइस एवं क्रूसान : वैचित्र्य, व्यवस्था, अनुपात और समान्या आदि गुणों में इन्हें सौन्दर्य का साक्षात्कार हुआ ।

गार्ल्सवर्दी - इनके अनुसार लय और सामंजस्य में सौन्दर्य वर्तमान रहता है ।

रीक्न -- के अनुसार वह अनन्तता, एकता, स्थिरता , समान्या, शुद्धि एवं सम्पत्रि में दृष्टिगत होता है लेकिन उसका सौन्दर्य ईश्वर से सम्पृक्त है ।

कॉडवल - ये समाज को प्रधानता देने वाले विद्वान चिंतक हैं और इन्होंने उसकी समाजपरक व्याख्या की है तथा उसे व्यक्ति में ही माना है ।

इसी तरह अनेक वस्तुवादी विद्वानों ने सौन्दर्य के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं जिनमें व्यक्तिगत आग्रह अधिक है । लेकिन इन लोगों ने वस्तु के ही भिन्न-भिन्न गुण-कर्मों में सौन्दर्य को लक्षित किया है । अत: इन्हें एक वर्ग के अन्तर्गत रखा गया है ।

पाश्चात्य विचारकों के समान ही भारतीय विद्वानों में भी कुछ वस्तुवादी चिंतक हैं यद्यपि अधिकांश लोगों को झुकाव समन्वय की ओर है ।

वस्तुवादीभारतीय आचार्यों में निम्नलिखित मुख्य हैं --
क्षेमेन्द्र , रूपगोस्वामी और आधुनिक आचार्य श्री मढकर।आचार्य क्षेमेन्द्र उसे उचित स्थान-विन्यास में देखते हैं। वे कहते हैं --

औचित्यं रससिद्धस्यं स्थिरं काव्यस्य जीवितम् ।
उचित स्थानविन्यासदलंकृतिरलंकृति :
औचित्यादच्युतानित्यंभवन्त्येवगुणागुणा:।

रूपगोस्वामी ने यथोचित सन्निवेश को ही सौन्दर्य का आधार माना है । परन्तु इनकी दृष्टि आत्मपरकता की ओर भी झुकी हुई मालूम पड़ती है । भट्टलोल्लट तथा शंकुक विषय में ही सौन्दर्य का अधिक दर्शन करते हैं । रीति, वक्रोक्ति , गुण एवं अलंकारवादी आचार्यों की दृष्टि भी वस्तुवादी ही अधिक है । इन्द्रिय-सन्वेदन को महत्व देने वाले आचार्य मढकर की दृष्टि वस्तुवादी है ।

आत्मपरक मान्यतायें

दूसरे वर्ग में वे दार्शनिक चिन्तक आतेहैं जिन्होंने वस्तु में सौन्दर्य न देखकर आत्मसापेक्ष गुणधर्मों में उसका दर्शन किया है । ऐसे लोगों में प्लेटो , प्लोटिनस , बामगार्टन , सेंट आगस्टाइन , लार्ड सेफ्ट्सबरी , लिवेक , पीयर एण्ड्री , रीड , शिलर , लोज़ , आड्गेन, हरबर्ट , विशर , मण्डेल्सोन , हिगेल, काण्ट , वर्क्ले , शापेन हर , हचीसन , ओस्कर वाइल्ड, क्रोचे , रस्किन , शेली , कीट्स आदि मुख्य हैं। इन्होंने सौन्दर्य सम्बन्ध में जो चिन्तन किया है वह आत्मपरक दृष्टिकोण सम्पन्न है । इन लोगों ने वस्तु को कुछ भी महत्व नहीं दिया हैऔर यदि वस्तु को महत्व भी दिया है तो बहुत कम । रीड का कहना है कि सौन्दर्य वस्तुगत होता ही नहीं हैं । हां, रस्किन आदि कुछ विचारकों की दृष्टि समन्वयात्मक भी कही जा सकती है । इन्होंने जो सौन्दर्य सम्बन्धी विचारों कोप्रस्तुत किया है, उसके मूल में इनकी व्यक्तिगत अनुभूति, सूक्ष्म अन्वेषिणी एवं तत्वनिरूपिणी बुद्धि तथाउदात्त भावना आदि वर्तमान हैं। परिस्थितिवश इन मूर्धन्य चिन्तकों के विचारों को अलग अलग प्रस्तुत न कर उनकी विचारधारा की मुख्य बातों को निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है --

इन लोगों के अनुसार इस नानारूपात्मक दृश्य-अदृश्य असीम जगत् की सृष्टि के मूल में कोई एक अव्यक्त चेतन सत्ता अवश्य वर्तमान है जो निरन्तर क्रिया-शील रहती है । प्लेटो ने उसे विचार (आइडिया) या आदर्शजगत् (आइडियल वर्ल्ड) से सम्बोधित किया है । शेलिंग के अनुसार वह निरपेक्ष ज्ञान या प्रज्ञा है। हेगेल उसे जड़-चेतन में नित्यप्रकाशित होने वाली प्रज्ञा या अद्वय (ऐब्सोल्यूट आर थाट) मानता है । शापेनहर उसे इच्छा शक्ति या संकल्प (विल) कहता है । लाज भी एक ईश्वर (पर्सनल डाइटी) की कल्पना अवश्य मानता है । विशर के अनुसार सौन्दर्य की मीमांसा केवल अद्वैत-भूमिका में ही हो सकती है । इस तरह हम देखते हैं कि इन लोगों ने एक आध्यात्मिक सत्ता को सौन्दर्य के आधार के रूप में स्वीकार किया है ।

हरवर्ट और कांट के अनुसार सौन्दर्य सम्बन्धी निर्णय व्यक्तिगत ही होता है और वह एक मानसिक वृत्ति है तथा मन के बाहर उसकी सत्ता नहीं है। रीड के अनुसार सौन्दर्य वस्तु में नहीं होता ।

सेंट आगस्टाइन के अनुसार भगवान् सत्यशिव एवं अनन्त सौन्दर्य के आकर हैं और उन्हीं का सौन्दर्य समस्त सौन्दर्य का स्रोत है ।प्लेटो तथा जाफ्राय सुखकर , प्रिय या उपयोगी होने तथा सुन्दर होने में अन्तर मानते हैं । प्लेटो के अनुसार उपयोगिता सौन्दर्य-बुद्धि में तो समर्थ है, लेकिन वह स्वयं सौन्दर्य नहीं है। वह (प्लेटो) आगे कहता है कि सृष्टि का मूल सौन्दर्य अखण्ड तथा एकरस रहता है और सभी सुन्दर वस्तुओं में उसी का सौन्दर्य प्रकाशित या निहित रहता है । जाफ्राय के अनुसार स्वार्थ भावना से संयुक्त होने पर वस्तु का सौन्दर्य धूमिल या कम पड़ जाताहै । वह सौन्दर्य से समुद्भूत आनन्द को नि:स्वार्थ, निर्मल तथा निष्काम मानता है । वह सौन्दर्य और ईश्वर को एक मानता है । कांट की धारणा से सौन्दर्य सार्वदेशिक एवं सबको समान आनन्द प्रदान करने वाला होता है । वह मेंडेल्सोन, जाफराय , हरबर्ट और आगस्टाइन के समान ही सौन्दर्य को नि:-स्वार्थ , निर्मल तथा निष्काम मानता है । मेंडोल्सन के अनुसार सौन्दर्य के आनंद के उपयोग में पूर्ण तृप्ति तथा शान्ति का अनुभव होता है ।

बामगार्टन की धारणा के अनुसार स्वाभाविक रूप में अन्त:करण की सारी वृत्तियाँ अपनी चरमपूर्णता के आदर्श की दिशा में सतत् विकासशील रहती हैं । जैसे ज्ञान सत्य की ओर इच्छामंगल की ओर इन्द्रिय ज्ञान सौन्दर्य की ओर। इसलिए सौन्दर्य मानव की वृत्तियों का एक आदर्श लक्ष्य है और उसमें बाधक तत्व कुरूप है ।

विक्टर कूंजा के अनुसार शारीरिक एवं प्राकृतिक दोनों प्रकार का भौतिक सौन्दर्य नैतिक्या आध्यात्मिक सौन्दर्य का प्रकाश मात्र ही है और यह आध्यात्मिक या नैतिक सौन्दर्य भी ईश्वर के सौन्दर्य पर आधारित है । अत: उसके सौन्दर्य से बढ़कर और कोई सौन्दर्य नहीं है । नैतिक एवं भौतिक समस्त जगत में उसी का सौन्दर्य प्रकाशित हो रहा है।साथ ही वह यह भी कहता है कि सौन्दर्य में भावों को उद्बुद्ध करने कीशक्ति होती है ,इसीलिए वह हमें प्रिय होता है ।

लोंज, रीड और हरबर्ट स्पेंसर सौन्दर्य को सहज ज्ञानगम्य मानते हैं, अभ्यास साध्य नहीं । साथ ही वे इस वृत्ति को उच्च आत्मिक संस्कारों का परिणाम भी स्वीकार करते हैं । स्पेंसर के अनुसार सौन्दर्य-भावना जाति के जीवन में संस्कार रूप में विकसित होती रहती है ।

पाश्चात्य विचारकों की भांति बहुत से भारतीय विचारकों ने भी आत्मपरक दृष्टिकोण को महत्व दिया है । बल्कि यह कहा जाय कि भारतीय धारणा मुख्य रूप से आत्मपरक ही है तो अत्युक्ति न होगी । सूक्ष्मतया देखने पर शंकर, कालिदास, भवभूति, तुलसी, सूर, रामकृष्णपरमहंस और विवेकानन्द आदि विद्वानों का सौन्दर्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण आत्मपरक ही है । आधुनिकों में श्री माटे, केलकर आदि का नाम इस प्रसंग में लिया जा सकता है । इस प्रसंग में स्वामी परमानन्द जी के विचार द्रष्टव्य हैं[१] ।

समन्वयवादी दृष्टिकोण

वस्तुपरक और आत्मपरक दृष्टिकोण वाले विद्वानों से भिन्न एक वर्ग उन लोगों का है जो समन्वय की दृष्टि रखते हैं । ये लोग सौन्दर्य को वस्तुगत तो मानते ही हैं साथ ही उसे आत्मपरक भी स्वीकार करते हैं । इस तरह दोनों को महत्व देकर ये अपना समन्वयवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं । वर्तमान युग में यह सिद्धांत पुष्ट से पुष्टतर होता जा रहा है । भारतीय विचारधारा के अनुसार तो कोई वस्तु तभी सुन्दर कही जा सकती है जब वह कलात्मक , सांस्कृतिक एवं धार्मिक तीनों दृष्टियों से सुन्दर हो । इस सम्प्रदाय में इसी समन्वयवादी दृष्टिकोण की पुष्टि की गई है । इस वर्ग के अन्तर्गत रस्किन, टालसटाय आदि पाश्चात्य तथा मम्मट, विश्वनाथ , अभिनव गुप्त, डा० रामास्वामी और बाबू गुलाबराय आदि पाश्चात्य विद्वानों का नाम रखा जा सकता है ।

---

१. स्वतन्त्रता और सौन्दर्य विवेकिनी शक्ति का सौन्दर्य है । वह सौन्दर्य बाह्य पदार्थों में नहीं , प्रत्युत् हमारे आत्मा में विद्यमान है । - - - हमारा आत्मा सौन्दर्य विवेकिनी शक्ति के रूप में पदार्थों को सुन्दर बनाता है - - - । सौन्दर्य बुद्धि उस द्वैत का नाश कर देती है जो ज्ञान और कर्म की अवस्था में विद्यमान रहती है । - - - तर्क से हम परमात्मा का चिन्तन कर सकते हैं और सौन्दर्य हमें साक्षात् ब्रह्म का दर्शन कराता है ।

--श्री परमानन्दामृत, पृ० २५-२६ ।

बिहारी की सौन्दर्य सम्बन्धी मान्यता

उपर्युक्त विवेचन में हम देख आये हैं कि सौन्दर्य के सम्बन्ध में लोगों की भिन्न-भिन्न धारणाएं हैं। कोई उसे वस्तुगत मानता है तो कोई उसे विषयी-गत। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी दृष्टि समन्वयात्मक है और वे दोनों पक्षों को महत्व देते हैं। वर्तमान युग में यह समन्वयात्मक दृष्टि अधिक पुष्ट होती जा रही है और अधिकांश विचारकों की सौन्दर्य-भावना सम्न्वयात्मक ही मालूम पड़ती है। बात भी वस्तुतः कुछ ऐसी है कि लोगों को समन्वयात्मक दृष्टि ही अधिक जंचती है। ये दोनों पक्ष अपनी-अपनी धारणा को अधिक उपयुक्त प्रमाणित करते हैं और परिणामतः अनावश्यक आग्रह के कारण वे सत्य तक पहुंचने में असमर्थ हो जाते हैं।

विषयीगत या आत्मपरक धारणा वालों का कहना है कि सौन्दर्य वस्तुपरक नहीं होता और यदि होता भी है तो उसका उतना महत्व नहीं है जितना कि विषयीगत सौन्दर्य का महत्व है। वस्तु का सौन्दर्य किस काम का है कि उसका दृष्टा ही न हो। साथ ही उनका कहना है कि सौन्दर्य तो दृष्टा की भावनायें ही होता है। जब हमारी भावना स्वस्थ एवं सुन्दर होती हैं तो अन्य वस्तु भी हमें सुन्दर लगती है और जब हमारी भावना दुःखपूर्ण होती है या उसमें बाह्य या आन्तरिक व्यवधानों के कारण अस्त-व्यस्तता होती है तो वही वस्तु हमें अच्छी नहीं लगती। पुष्प-स्तवकों से लदी कोमल वल्लरी से आलिंगित बौरे रसालों के पल्लव-पुंजों में बैठी कोकिल की हृदय-रंजिनी मीठी तान, शारदीय ज्योत्स्नी अमल-धवल शीतल -चन्द्र-ज्योत्सना, उपवन एवं सरसी के राशि-राशि फुल्ल-कुसुम-स्तवकों के ऊपर मधु-गंध-लोभी अलि-वृन्द की मधुर गुंजार और सावन-भादों के निर्मल गगन में सहसा उमड़-घुमड़ कर घिर आनेवाली श्याम-धवल-मेघ-माला संयोगियों को तो आनन्दप्रद होती है, लेकिन उनसे वियोगियों की क्या दशा होती है, इससे क्या सिद्ध होता है ? यही न कि सौन्दर्य दृष्टा की भावना में ही होता है। फिर यह भी तो कहा गया है कि जिसे पिया चाहे वही सुहागिनि।

तमाशाई ही न हो तो तमासे से क्या, दुनिया के लिए लैला काली-कलूटी थी और मजनू उसी पर मरा करता था । माता को कुरूप बच्चा भी सुन्दर लगता है । अर्थात् सौन्दर्य विषयीगत होता है ।

इसके विपरीत वस्तुपरक दृष्टिकोण वालों का कहना है कि यदि वस्तु में सान्दर्य होगा ही नही तो दृष्टा उसमें से कैसे उत्पन्न कर सकता है । निर्मल नील-जल में विकसित लाल कमल को सभी लाल ही कहते हैं और जल को नीला ही। यदि सौन्दर्य दृष्टा की भावना में होता है तो क्यों नही कोई जल को लाल कहता है और लाल कमल को नीला या अन्य रंग का । सौन्दर्य तो वस्तु में ही होता है, हां दृष्टा यदि उसको देखने में असमर्थ होतो यह बात दूसरी है । जाज्वल्यमान दिनकर की आंखों को चौंधिया देने वाली किरणों या प्रभा को यदि उलूक अपनी दुर्बल आंखों से देख नही पाता तो उस दिन मणि का क्या दोष ? अनन्त सौन्दर्य सम्पन्न प्रकृति के नानाविध रमणीय रूपों को यदि कोई देखने में असमर्थ है तो उसमें प्रकृति का क्या दोष है ? यदि वीणा की मधुर तान शरद की सुधा-धवल-चन्द्र-ज्योत्सना, वनराजी का पुष्प-हास, पक्षियों का कलकूजा और भंवरों का मधु-निश्वन् तथा दुग्ध-फेन निभ-धवल शय्या एवं मनोहर वस्त्राभूषण वियोगिनी नायिका को अच्छे नही लगते तो इससे क्या ? किसी को अच्छे न लगने से उनका महत्व थोड़ कम पड़ जाता है ? अर्थात् उनके अनुसार सौन्दर्य वस्तुगत ही होता है।

इन दोनों वर्गों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने दोनों पक्षों को महत्व दिया है और दोनों का समन्वय कर अपनी समन्वयात्मक धारणा प्रस्तुत की है । पश्चिमी विचारकों में भी इस दृष्टि के लोग हैं और भारतीय विचारकों में भी । अपने यहां रसवादियों ने इसका जोरदार समर्थन किया है ।

जहां तक बिहारी की सौन्दर्य दृष्टि का प्रश्न है, हम उनकी सतसई के अवगाहन के पश्चात् यह देखते हैं कि उनमें सभी दृष्टिकोणों से सम्बन्धित दोहे मिल जाते हैं। उन्होंने वस्तु के सौन्दर्य को तो मान्यता दी ही है, दृष्टा की भावना को भी उन्होंने पर्याप्त महत्व दिया है और इस दृष्टि को पुष्ट करने वाले दोहे भी उन्होंने प्रस्तुत किए हैं । साथ ही ऐसे भी दोहे मिलते हैं जिनमें विषय-विषयीगत दोनों पक्षों का समन्वित रूप प्रस्तुत कर दिया गया है । दूरदर्शी एवं

अनुभवी बिहारी दोनों पक्षों की एकांगिता से परिचित ते । अत: उन्होंने उसके समन्विति रूप को भी प्रस्तुत कर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दिया । वस्तुत: बिहारी की दृष्टि समन्वयात्मक ही थी । इस उपपत्ति के प्रमाणस्वरूप आगे उनके दोहों को प्रस्तुत किया जारहा है ।

नागर बिहारी को सम्भवत: कभी अरसिकों से पाला पड़ा था और उनकी प्रतिभा का समुचित आदर नहीं हुआ था । फलत: उनको गुलाब को माध्यम बनाकर अपने हृदय के क्षोभ या दृष्टा के महत्व को प्रकट करना पड़ा । इस सम्बन्ध में उनके निम्नलिखित दोहे दृष्टव्य हैं --

कर लै, सूंघि, सराहि हूं रहे सबै गहि मौनु ।
गंधी अंध, गुलाब की गवई गाहकु कौनु ।।६२४।।

\+ \+

फूल्यो अनफूल्यो भयो गंवई गांव गुलाब ।

इन दोहों में तो उन्होंने अन्योक्ति के द्वारा दृष्टा के महत्व को प्रतिपादित किया है । लेकिन निम्नलिखित दोहा स्पष्ट रूप में दृष्टा भी भावना का उद्घोष कर रहा है । समय-समय या परिस्थिति विशेष में सभी सुन्दर होते हैं । रूप और कुरूप कोई नहीं होता। यह भ्रमपूर्ण बातें हैं ,जिसमें जिसकी रुचि होती है उसके लिए वही सुन्दर होता है --

समै समै सुंदर सबै , रूपु कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ।।४३२।।

आत्मपरक दृष्टिकोण आदर्श वादियों का है जो सापेक्षिता को भी महत्व देते हैं । बिहारी चाह या इच्छा की पूर्ति में सापेक्षिता मानते हैं --

अति अगाधु, अति औथरौ नदी, कू, सरु ,बाइ।
सो ताकौ सागरु, जहां जाकी प्यास बुझाइ।।४११।।

अब उनके विषयगति सौन्दर्य सम्बन्धीदोहों को देखिये--

यदि कोई सुन्दर वस्तु के सौन्दर्य को ग्रहण करने में असमर्थ है तो उससे उस वस्तु के सौन्दर्य की महिमा नहीं घट जाती है --

सीतलाता रु सुबास कौ घटै न महिमा-मूरु।
पीनस वारै जौ न तज्यौ सोरा जानि कपूर ।।५६।।

+ +

जादू वह जो शिर पर चढ़के बोले । सौन्दर्य कहीं छिपाए छिपता है ? वह जहां कहीं भी होगा अपनी मन्द-मुग्धकारिणी ज्योति से सबको आकर्षित करेगा ही। बिहारी कहते हैं --

बाल छबीली तियनु में बैठी आपु छिपाइ ।
अरगट हीं पानूस सी परगत होति लखाई।।६०३।।

नायिका की सुन्दरता के सम्बन्ध में रसिक नायक से दूती की बात भी सुन लीजिये--

'हौं रीझी, लखि रीझिहौं छबिहिं छबीले लाल।'
सोनजुही सी होति दुति-मिलत मालती माल ।।८।।

दूती कहती है कि मैं तो साधारण स्त्री हू लेकिन मैं भी उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई, लेकिन तुमतो इस कला में दक्ष हो इसलिए तुम अवश्य उसके सौन्दर्य पर रीझ उठोगे । बिहारी ने सुन्दरी थुरहथी बहू के सौन्दर्य को देखने के लिए भिखारियों की भीड़ ही जमा कर दी है। आखिर भिखारी भी तो रीतिकाल के हैं--

कन देबौ सौं प्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रूप-रहचटैं लगि लग्यौ मांगन सबु जगु आनि ।।२६५।।

इस तरह इन दोहों से वस्तुगत सौन्दर्य की पुष्टि होती है, यह स्पष्ट है ।

यहां तक तो सौन्दर्य के विषयगत एवं विषयीगत दृष्टिकोण की बात रही। अब बिहारी के समन्वयात्मक दृष्टिकोण को भी साक्षात्कार कियाजाय। उन्होंने अलग-अलग दृष्टिकोणों की महत्ता स्वीकार कर उसके समन्वयात्मक दृष्टि-कोण को भी स्वीकार किया है जिसमें वस्तु तथा दृष्टा की भावनादोनों को महत्व दिया गया है । निम्नलिखित दोहा उनकी इस धारणा को स्पष्ट कर देता है--

मोहिं भरोसौ, रीझिहै उझकि झांकि इक बार ।
रूप-रिझावनहारु वह, ए नैना रिझवार।।६८२।।

'रूप रिझावन हार है' में उसका वस्तुगत पक्ष आ गया है तथा 'ए नेना रिझवार' में उसका विषयी पक्ष। इस तरह उन्होंने दोनों पक्षों को स्थान देकर अपनी समन्वय की दृष्टि को स्पष्ट किया है ।

द्वितीय अध्याय

रू प - सौ न्द र्य

स्त्री-सौन्दर्य

पुरुष-सौन्दर्य

अनुभाव-सौन्दर्य

रमणी के निसर्ग सुन्दर शारीरिक अवयवों की गठन, उससे निरन्तर विकीरण-शील मनोहर कांति, भावप्रेरित अंग-भंगी तथा अनेक प्रकार की चेष्टाओं और मुद्राओं के साथ ही आकर्षक वस्त्र, आभूषण और अनुलेपों आदि बाह्य उपचारों का रूप-सौन्दर्य के उत्कर्ष में महत्वपूर्ण योग होता है । अत: उपर्युक्त तत्वों के साथ ही उसके रूप-सौन्दर्य के प्रसंग में कवियों ने इन बाह्य साधनों का भी वर्णन किया है । नारी के रमणी रूप की अवधि वय: संधि और प्रौढ़ावस्था के मध्य ही पड़ती है और सभी कवियों ने इसी अवधि के मध्य की उसकी विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया है । रीतिकालीन कवियों ने मुख्य रूप से उसके रमणी-रूप को ही अपनी लेखनी का विषय बनाया है और बिहारी की तूलिका भी इसी के चित्रण में प्रवृत्त हुई है ।

मुख

उनके सभी मुख-सम्बन्धी दोहों को देखने सेयह ज्ञात होता है कि उनकी दृष्टि मुख के आकार-प्रकार की ओर नहीं गई है और वह उसकी सहज गोराई और लुनाई के आकर्षण में ही लुब्ध है । नायिका का श्याम रंग उन्हें अच्छा नहीं लगता है और वे सर्वत्र गोरे मुख के उपासक के रूप में ही दृष्टिगोचर होते हैं । हां गोरे मुख पर के काले तिल या दिठौना की बात दूसरी है --

"पिय तिय सौं हंसिके कह्यो , लखै दिठौन दीन ।
चंद मुखी, तुम चंदु तैं भले चंद समु कीन।।४३।।
पत्रा ही तिथि पाइयै वा घर के चहुं पास ।
नित प्रति पून्यौई रहै , आनन ओप उजास ।।७३।। आदि

इस गोरे मुख के सौन्दर्य की विभिन्न स्थितियों का चित्रण कवि ने बड़ी कुशलता एवं सूक्ष्मदर्शिता से किया है ।

नायिका ने अपने गोरे मुख पर चन्दन की बेंदी (बिन्दी) लगाई है । लेकिन गोरे मुख के पीताभ रंग-साम्य के कारण वह दृष्टिगोचर नहीं होती है। तत्पश्चात् जब वह मदपान करती है तो मदिरा-जनित लाली ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों वह बेंदी उभरती जाती है । कवि की सूक्ष्म दर्शिता यहां

सराहनीय है । बेंदी के उभरने का कथन तो व्याज मात्र है, उसकी दृष्टि तो उस सुन्दर गोरे मुख पर सूक्ष्म गतिशील रंग-परिवर्तन पर है । *

काला रंग स्वयं तो उतना आकर्षक नहीं होता है, लेकिन जब वह गौरवर्ण की भूमिका में प्रस्तुत होता है तो दोनों की मिली-जुली स्थिति से एक विचित्र सौन्दर्य उत्पन्न होता है जो अत्यन्त आकर्षक होता है । निम्नलिखित दोहे में कवि ने इसी सौन्दर्य को रूप देने का सफल प्रयत्न किया है ।

गोरे मुख पर काली विन्दी तो सुन्दर लगती ही है, उसपर लाल, उजली और पीली बिन्दियां भी बिहारी के अनुसार रमणीय सौन्दर्य उत्पन्न करती हैं --

सबै सुहाये ई लगैं बसैं सुहाएं ठाम ।
गोरैं मुंह बेंदी लसैं अरुन, पीत सितस्याम।।२७१।।

विभिन्न रंगों की गोल बिन्दियों के अतिरिक्त मिश्रित रंगों या एक रंग की खड़े आकार की बिन्दी या तिलक भी सौन्दर्यवर्धक होता है । निम्नलिखित दोहे में मिश्रित रंग के खड़े तिलक के सौन्दर्य को चित्रित किया गया है --

गदराने तन गोरटी, ऐपन आड़ लिलार ।
हूठ्यौं दै इठलाइ दृग, करै गवांरि सुवार।।६३।।

ओठ(अधर-ओष्ठ)

जिस प्रकार बिहारी ने मुख के आकार के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है उसी प्रकार ओठों के आकार के सम्बन्ध में भी कुछ नहीं कहा है । उन्होंने ओठों की लालिमा से उत्पन्न सौन्दर्य का ही वर्णनकिया है । यह लालिमा दो प्रकार की होती है -- एक तो सहज और दूसरी नायक के द्वारा नायिका के अधरपान से उत्पन्न । लाल रंग पर जब पीताभ उजला रंग प्रस्तुत होता है तो वह बड़ा अच्छा लगता है । नायिका की वेसर में जड़े हुए मोती की आभा उसके ओठों पर पड़ती है । वह भोली नायिका उसे चूना समझकर पोंछ रही है । यद्यपि नायिका का भोलापन (मुग्धत्व) व्यंग्य है लेकिन कवि की दृष्टि उस ओठ के सौंदर्य परभी है ।

* मिलि चंदन बेंदी रही गोरे मुंह न लखाइ
ज्यों-ज्यों मद लाली चढ़ै, त्यों-त्यों उघरति जाइ।।२०

दन्तकांति

दांत यदि स्वच्छ और उजले हों तो उनसे एक धवल प्रकाश निकलता है जो अत्यन्त ही सुन्दर होता है। निम्नलिखित दोहे में उनकी उसी धवलता का चित्रण किया गया है --

"चौंका चमकनि-चौंध मैं परति चौंधि सी डीठि ।।१५०।।"

चमकीले और स्वच्छ दांत भी यदि ऊबड़-खाबड़ हों तो अच्छे नहीं लगते। कवि ने दंतदात के प्रसंग में उनकी इस विशेषता की ओर भी संकेत कर दिया है --

छला की ढिग कत ढांपियति, सोभित सुभग सुबेष ।
हद रदछद छवि देति मट्ट सद-रद-छद की रेख।।२१४।।

जिन अनेक वस्तुओं में क्रमबद्धता नहीं होगी उनसे कोई रेखानहीं बन सकती। दांतों के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि वे ऊबड़-खाबड़ रूप में होंगे तो दंतदात के समय ओंठ या अंन्य अंग पर एक निशान यहां पड़ेगा तो दूसरा दूसरी जगह और इस तरह उनमें तारतम्य न होगा। यदि वे एक पंक्ति में होंगे तो उस समय उनसे जो निशान बनेंगे उनसे एक रेखा सी बन जायेगी। इस सद-रद-छवि की रेखा में कवि ने इसी ओर संकेत किया है।

कपोल

गोरे और स्निग्ध कपोलों से एक प्रकार की आभा निकलती है जो अत्यन्त सुन्दर होती है। यह सोने की रंग की होती है। कवि ने कपोलों की इसी द्युति में स्वर्णिम तरिवन की चमक को लुप्त कराकर उसकी व्यंजना की है। हंसने के समय कपोलों में छोटे-छोटे गड्ढे पड़ जाते हैं। इस स्थिति में अत्यन्त आकर्षक सौन्दर्य उत्पन्न होता है। बिहारी की सूक्ष्म दृष्टि ने इसका दर्शन किया था।

गोरी गदकारी परैं,हंसत कपोलनु गाड़ ।
कैसी लसति गवांरि यह सुन किरवा की आड़।।७०८।।

चिबुक

स्त्रियां जिस प्रकार ललाट पर दिठौना लगाती हैं , उसी प्रकार चिबुक पर भी गोदना-काले रंग का गोदवाती हैं । नायिका का मुख या चिबुक लालिमा युक्त है । उसने अपने चिबुक पर काले रंग का गोदना गोदवाया है । उस लालरंग के चिबुक पर श्याम रंग के गोदने से अत्यन्त रमणीय सौन्दर्य उत्पन्न हुआ है । कवि ने गुलाब के फूल में बैठे हुए काले भौंरे के उपमान से उसके सौन्दर्य-विम्ब को ग्रहण कराने का सफल प्रयत्न किया है ।

ललित स्याम लीला ललन, वदी चिबुक छवि दून ।
मधु-छाक्यौ मधुकर पर्यौ मनौ गुलाब-प्रसून।।२७०

उरोज

विशेष आकार से उत्पन्न सौन्दर्य - स्तनों का आकर्षण उनके खड़े और नुकीले होने में है । यदि वे इस परिस्थिति में न हों तो निरसता उत्पन्न करते हैं । कवि ने यहां उनके इसी स्थिति का आभास कराने के लिएउन्हें गिरि कहा है । स्पष्ट है कि पर्वत की चोटियां खड़ी और नुकीली होती हैं ।

कुचगिरि चढ़ि अति थकित ह्वै, चली डीठि मुंह चाड़।
फिर न टरी परियै रही गिरी चिबुक की गाड़।२६

चलन पावतु निगम-मगु जगु उपज्यौ अति त्रासु ।
कुच उतंग गिरिवर गह्यौ मैना मैन निवासु ।।८७

ऊपर तो बड़े कुचों का सौन्दर्य है यहां उनके छोटे आकार के कारण उत्पन्न आकर्षण का चित्र है --नायिका के स्तन अभी छोटे हैं और वह उन्हें अंगिया तथा साड़ी से छिपाने का प्रयत्न करती है , लेकिन छोटे होने पर भी तीखे होने के कारण वे छिप नहीं पाते --

दुरत न चुक बिच कंचुकी, चुपरी सारी सेत ।
कवि-आंकनु के अरथ लौं , प्रगटि दिखाई देत।।१८८

पहुला हारु हियैं लसै, सन की बेंदी भाल ।
राखति खेत खरे खरे उरोजनु बाल ।।२४८

प्रारम्भ अवस्था में जब स्तन विकसित होने लगते हैं तो उस समय भी उनमें एक

आकर्षण होता है । उस समय नायिका के मन में भी उनके प्रति जिज्ञासा होती है । कवि ने उनकीइस स्थिति को भी चित्रित किया है ।

भावकु उभरौं हौं भयो , कछुक परयो भरु आइ ।
सीपहरा कैं मिसि हियौं, निसदिन हेरत जाइ।।२५२
गाढ़ें-ठाढ़ें कुचनु ठिलि बिच हिय को ठहराइ ।
उकसौं हैं ही तौ हियें , दईं सबै उकसाइ।।४६२

यहां तक तो उनमें आकारगत सौन्दर्य की बात हुई । अब उनके वर्ण-सौन्दर्य को देखा जाय ।

नायिका ने अपने शरीर के रंग के समान रंगवाली कंचुकी तथा अन्य वस्त्र धारण किया है । रंगसाम्य के कारण वस्त्र उसके अंग से मिल गये हैं और ऐसा ज्ञात होता है कि उसने कपड़ा पहना ही नहीं है । अर्थात् उसके कुच आदि अवयव प्रत्यक्ष से दिखाई पड़ते हैं --

भई जु छवि तन वसन मिलि, वरनि सकैं सुन बैन ।
आंग ओप आंगी दुरी, आंगी आंग दुरैन ।।१८९

कटि

कृशता-जन्य सौन्दर्य --

अंगों की गठन में कटि यदि मोटी हो तो वह अच्छी नहीं लगती उसके पतली होने से ही सौन्दर्य होता है । उन्होंने उसकी कृश-ताजन्य सौन्दर्य को ही निम्न लिखित दोहे में प्रस्तुत किया है । "ज्यौं-ज्यौं जोवन जेठदिन, कुचमिति अति अधिकाति । त्यौं त्यौं छिन छिन कटि छपा,छीछ परति नित जाति।११२

कटि के क्षीण होने से उसका भार पड़ने पर लचकना स्वाभाविक ही है । नायिका झूला झूल रही है । झोंका देने के समय मालूम पड़ता है कि उसकी कटि टूट जायेगी लेकिन वह लपक जाती है और वंच जाती है । यहां कटि के लचकने में जो आकर्षण है उसी को कवि व्यंगित करना चाहता है ।

वरजें दूनी हठ चढ़ै , न सकुचै न सकाइ ।
टूटत कटि दुमची-मचक लचकि लचकि ऱचि जाइ।।६८६

जांघ

जाघों की गठन ऐसी होनी चाहिए कि वे मूल में स्थूल हों और क्रमश: नीचे की ओर पतली होती जायें । गठन में इस तरह के होने के साथ ही चिकने (स्निग्ध) होनी चाहिएं । ऐसी ही जांघ सुन्दर होती है । केले के खंभ में उपर्युक्त दोनों गुण पाये जाते हैं । अत: कवि ने उसी से जांघों की उपमा दी है। यहां नायिका के जांघों की गठन इतनी सुन्दर है और वे इतनी चिकनी हैं कि उनके सामने केले की गठन भी और स्निग्धता व्यर्थ सी जान पड़ती हैं । कवि ने नीचे के दोहे में इसी तथ्य का चित्रण किया है --

'जंघ जुगल लोइन निरे, करे मनो विधि मैन ।
केलि तरुनु दुख दैन ए, केलि तरुन सुख दैन।।२१०

नितम्ब

नायिका के नितम्ब यदि बड़े होते हैं तभी वे आकर्षक होते हैं । शारीरिक गठन में कटिक्षीणा होनी चाहिए , और नितम्ब स्थूल होने चाहिए। इस क्षीणता तथा स्थूलता के कारण आकर्षक सौन्दर्य उत्पन्न होता है । यौवनागम के समय इनके आकार में और भी वृद्धि हो जाती है --

स्तन मन नैन नितम्ब को बड़ो इजाफा कीन।।२

एड़ी

एड़ी को लाल बनाने के लिए स्त्रियां रंगों का उपयोग करती हैं । गौरवर्ण की देह में यदि पैर लाल हों तो उनसे एक विचित्र सौन्दर्य उत्पन्न होता है । इसीलिए सभी कवियों ने उसको कमल के समान वर्णित किया है । बिहारी यहां नायिका की एड़ियों की स्वाभाविक लाली का चित्रण कर रहे हैं । भोली नाइन नायिका की एड़ियों में रंग (महावर) भरने के लिए आई है। लेकिन वे तो सहज ही लाल हैं । वह समझती है कि यह पहले की लगाई हुई महावर के कारण ही लाल हैं । वह उनको साफ करने लगती है , क्योंकि पहले लगाये हुए महावर को या रंग को साफ कर देने पर ही नया रंग अच्छी तरह चढ़ता है । कवि ने नाइन को भ्रम में डालकर स्वाभाविक लालिमा को व्यंजित किया है --

'पाइ महावरु दैन कौं, नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ।।३५'

इसी तरह निम्नलिखित दोहे में भी नाइन तो महावरी देने के लिए आती है लेकिन उनकी स्वाभाविक लालिमा को देखकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है --

'कौंहर सी एड़ीनु की, लाली लेखि सुभाइ ।
पाइ महावर देइ को, आयु भई वे पाइ।।४४

पैर की अंगुलियां

नायिका की पैरों की अंगुलियां अत्यन्त सुकुमार और लाल हैं । उन्हें देख कर कवि यह उत्प्रेक्षा करता है कि ये अत्यन्त सुकुमार हैं और मालूम पड़ता है कि विछुओं के मार से दबकर ही उनका रंग (अलक्त) चू रहा है । यह उत्प्रेक्षा अत्यन्त सुन्दर है --

'अरुन-चरन-तरुनी-चरन, अंगुरी अति सुकुमार।
चुवत-सुरंगु रंगु सी, मनौ चपि विछियनु के भार।।४१८'

पद-तल लालिमा

नायिका के पद-तल लाल हैं । वह कहीं जा रही है । जब वह चलने के लिए पैरों को उठाती है उस समय ऐसा मालूम पड़ता है कि दुपहरिया के फूल फूले हों , क्योंकि पैरों के उठाने के समय पद-तल दिखाई पड़ते हैं --

'पग पग मग अगमन परत, चरन अरुन दुति झूलि।
ठौर ठौर लखियत उठे, दुपहरिया से फूलि।।४९०'

पैर का गट्टा

पैर के गट्टों की सुन्दरता का भी कवि ने वर्णन किया है --

'रह्यौ ढीठु ढाढ़सु गहे , ससहरि गयौ न सूरु।
मुरयौ न मनु मुरवानु चपि, गौ चूरनु चपि चूरु।।२०८'

हाथ की अंगुलियां

नायिका की कनिष्ठिका अंगुली गोरी है और उसका नख लाल रंग का है तथा उसने स्यान रंग का छल्ला पहन रखा है । इन तीनों रंगों के उयोग से जो सौन्दर्य उत्पन्न हो रहा है उसके दर्शन से प्राप्त आनन्द को कवि मुक्ति के समान बताता है और उसे त्रिवेनी कहता है --

'गोरी छिगुनी नख अरुन, छला स्याम छवि देह।
लहति मुकति रति पलकु यह नैन त्रिवेनी सेह।।३३८'

अलक

रूप-सौन्दर्य में अलकों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है और विशेषकर नायिकाओं के सौन्दर्य में और भी ।

बिहारी ने उनकी विभिन्न स्थितियों , रंग तथा सुकुमारता आदि के कारण उत्पन्न सौन्दर्य का सूक्ष्मता के साथ अवलोकन किया है तथा उनकी विभिन्न स्थितियों का वर्णन उनकी सतसई में दृष्टिगोचर होती है ।

नायिका स्नान के पश्चात् अपने बालों को -- जो पानी से भीग गये हैं - सुलझा रही है । उसने उनको मुख के ऊपर आगे की ओर खींच लिया है। स्पष्ट है कि केश-राशि के आगे की ओर आ जाने से उसकी आखें और मुख आदि ढंक गये हैं । वह उन्हीं को सुलझाने के से अपनी अंगुलियों के द्वारा उनमें छेद कर नायक को देख रही है । कवि ने इस विशेष स्थिति का चित्रण अत्यन्त सुन्दर रूप में उभार दिया है --

'कंज नयनि मंजन किए, बैठी व्यौरति वार।
कच-अंगुरी-विच दीठि है,चितवति नंद कुमार।।७८'

उसकी दूसरी स्थिति देखिए । नायिका ने अपने बालों को मुक्त ही रखा है, उन्हें बांधा नहीं है । हां वे संवार अवश्य दिये गये हैं, अस्त-व्यस्त नहीं हैं । वे चिकने हैं और काले हैं । उनको स्वच्छ करके सुगन्धित कर दिया गया है । साथ ही वे अत्यन्त कोमल हैं । ऐसे सुन्दर विथुरे-सुधरे बालों को देखकर मन पथ-अपथ नहीं देखता है --

'सहज रुचिक्कन,स्याम रुचि,सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनतु न मनु पथ-अपथु, लखि विथुरे-सुधरे वार।।९५'

अब मुख के ऊपर आई मुक्त अलकावली की शोभा देखिए -- गोरेमुख पर नायिका ने लाल रंग की बेंदी लगाई है और भाल तथा बेंदी के आस-पास मुक्त केशराशि छाई हुई है । कवि उसे राहु से ग्रसित सूर्य तथा चन्द्र की उपमा देता है । इस अलंकार में तो सौन्दर्य नहीं है लेकिन कवि जिस स्थिति विशेष को सामने लाना चाहता है वह तो सुन्दर है ही --

'भाल लाल बेंदी-छए, छुटे बार छवि देत।
गहबो राहु अति आहु करि मनुससि-सूर समेत।।३५५'

कवि ने पीठ पर छाई हुई केशराशि का भी दर्शन किया है । पीठ पर मुक्त रूप में छाए हुए होने पर भी वे बहुत सुन्दर लगते हैं । वे जबतक बड़े न होंगे तब तक पीठ तक जा नहीं सकते । स्त्रियों के बालों के लम्बे होने में भी आकर्षण होता है --

'मूड़ चढ़ाऐउं रहे परयौ पीठि कच भारु।
रहै गरैं पर राखिबौ तऊ हियैं पर हारु।।४५१'

यहां तक तो अपनी मुक्त स्थिति की शोभा का वर्णन हुआ । अब ज़रा गुम्फित बालों के सौन्दर्य का दर्शन किया जाय --

काले सुकुमार बाल मुक्त रूप में होने पर दर्शक को तो आकर्षित करते ही हैं लेकिन जब उनकी वेणी गूंथ दी जाती है तो भी वे मन को बांधे बिना नहीं छोड़ते --

'छुटे छुटावत जात हैं ,सटकारे सुकुमार ।
मनु बांधत वेनी बंधे नील छवीले बार'।।५७३

आगे उन्होंने उनको जूड़ा बांधने की स्थिति में उपस्थित किया है --

'अंगुरिन उचिमरु मीचि दै,खएं सीस पट टारि।
काको मन बांधे न यह जूरा बांधनि हारि ।।

अब एक चित्र उपस्थित करके इस प्रसंग को समाप्त किया जायेगा। स्त्रियां और पुरुष कुंचित बालों की एक आध लटों को मुख के ऊपर आगे की ओर लटका हुआ छोड़ देते हैं । उस समय उसकी स्थिति विकारी के समान हो जाती है और वह अत्यन्त ही सुन्दर लगती हैं। इस रूप में उन्हें स्त्रियां या पुरुष आज भी बनाते हैं । बिहारी ने निम्नलिखित दोहे में इसी चित्र को प्रस्तुत किया है -

'कुटिल आलक छुटि पर मुख अटिगो इतो उदोतु ।
बंक विकारी देत ज्यों दाम रुप्या होतु ।।४४२'

नेत्र

रूप-सौन्दर्य के वर्णन में विहारी ने सबसे अधिक दोहे नेत्रों के ऊपर लिखे हैं और उनकी विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया है ।

आकारजनित सौन्दर्य

छोटी आंखों में वह आकर्षण और सौन्दर्य नहीं होता जो बड़ी में होता है । यौवनागम के समय और अवयवों के साथ ही नयनों में विस्तार और विकास होता है । वे इस तरह बढ़ते हैं जैसे उनमें प्रतिद्वन्दिता लग गई हो--

'अरतें टरत न वर परे दई मरक मनु मैन ।
होड़ा-होड़ी बढ़ि चले चितु चतुराई नैन ।।३

आकार में नयन तो बड़े होने ही चाहिएँ लेकिन उनका आकार लम्बा होना चाहिए और वे कानों की तरफ खिंचे होने चाहिएँ। इसीलिए कवियों ने उनका कान तक फैले हुए होने से उत्पन्न सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत किया है । बिहारी के निम्नलिखित दोहे में उसी सौन्दर्य का चित्रण है --

'जोग जुगुति सिखए सबै मनो महामुनि मैन ।
चाहत पिय अद्वैतता काननु सेवत नैन ।।१३

खेलन सिखए अलि भले चतुर अहेरी मार।
कानन चारी नयन मृग नागर नर नु सिकार।।४५

हरिणी के नयन भी बड़े तथा उजले होने के कारण बहुत सुन्दर होते हैं। अत: कवियोंने प्राय:उनकी उपमा हरिणी के नयनों से ही दी हैं। बिहारी ने नायिका की आंखों के सामने हरिणी की आंखों को हीन बताया है --

'वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैंन।
हरिनी के नैनान ते,हरि नीके ये नैन।।६७

एकाध स्थान पर उन्होंने हरिणी के नयनों के समान भी उनके सौन्दर्य को बताया है --

'मृग नयनी दृग की फरक, उर उछाह तन फूल।
छिन ही पिय-आगम उमगि पलटन लगी दुकूल।।२२२

बड़े और लम्बे होने के साथ ही उनका अनियारा (नुकीला) होना भी सौन्दर्य उत्पन्न करता है। जिनकी आंखें बड़ी तो होती हैं लेकिन नुकीली नहीं होती वे सुन्दर की जगह पर असुन्दर ही दिखाई देती हैं। बिहारी ने अपनी नायिकाओं की आंखों को अनियारा ही चित्रित किया है --

'बेधक अनियारे नयन, बेधत करि न निषेधु।
बरवट बेधतु मोहियो तो नासा को बेधु ।।२७
दृगनु लगत बेधत हियहिं विकल करत अंग आन।
एतेरे सबते विषम, ईछन तीछन बान ।।३४६'

वर्ण-सौन्दर्य

जिस प्रकार निर्मल एवं स्वच्छ सरसी में हल्के गुलाबी रंग के कमलों के खिल जाने से श्री आजाती है उसी प्रकार अनियारे नयनों में लालिमा का सन्निवेश होने से उनका सौन्दर्य बढ़ जाता है। यह लालिमा नैसर्गिक एवं अर्जित दो प्रकार की होती है। असल में नैसर्गिक लालिमा में भी सौंदर्य होता है। लेकिन अर्जित लालिमा के कारण उत्पन्न सौन्दर्य भी रमणीय ही होता है। यह अर्जन कई प्रकार का होता है। मदिरा सेवन से, केलिजागरण से, सपत्नी-भाव से उत्पन्न क्रोध के कारण और भाव से प्रेरित भंगी आदि से।

नायक रात में किसी दूसरी स्त्री के पास रहा है और उठ कर नायिका के पास आता है। रात्रि-जागरण के कारण उसकी आंखें कुछ लाल हो गई हैं। नायिका को तो पहले से ही सन्देह था और जब उसकी आंखों को लाल देखती है तो उसके सन्देह की पुष्टि हो जाती है। अब यह स्वाभाविक है कि उसको क्रोध आ जाय। अब इस अवस्था में उसकी त्योरी कुछ चढ़ जाती है और आंखों में कुछ ललाई आ जाती है। यह क्रोध के भाव से प्रेरित होकर उत्पन्न हुई है। अब यहां प्रश्न उठ सकता है कि क्या क्रोध के कारण उत्पन्न लाली में सौन्दर्य होगा ? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि यहां नायिका ने क्रोध किया है लेकिन उसके हृदय में नायक के प्रति अभी प्रेम तो है ही। अत: हृदय में प्रेम और आंखों में क्रोध लिए भी वह सुन्दर ही लगेगी --

'कंज नयनि मंजनु किए, बैठी न्योरति वार ।
कच-अंगुरी-विच दीठि दै, चितवति नंद कुमार।। ७८'

उपर्युक्त दोहे में कमल के समान उसकी आंखों बताकर कवि ने उसकी स्वाभाविक लाली को व्यंजित किया है

श्यामता -- 'सनि-कज्जल चख-झख लगन, उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु ।।५।।

दर्शन के लालच से उत्पन्न सौन्दर्य --

जब स्त्रियां अपने प्रिय को देखने के लिए या देख कर सदा देखते रहने के लिए उत्सुक होती हैं उस समय उनके नयनों में एक विचित तरह की चमक आ जाती है और उनमें दर्शन-लालसा स्पष्ट दिखाई पड़ती है । बिहारी ने नीचे के दोहे में उसी स्थिति का चित्र दिया है --

चितई ललचौं है चखनु डटि घूंघट पट मांह ।
छलसौ चली छुवाई कै छिनकु छवीली छांह।।११२।।
जसु उपजसु देखत नहीं, देखत सांवल गात ।
कहा करौं लालच भरे, चपल नयन चलि जात।।१५७।।
नख सिख रूप भरे खरे, हौं मांगत मुसुकानि ।
तजत न लोचन लालची, ए ललचौंहीं बानि।।१५८।।

यहां तक तो लालिमा और श्यामता से उत्पन्न सौन्दर्य की बात रही अब जरा अनेक रंगों में रंगे हुए नयनों का सौन्दर्य देखिए --

'सायक-सम मायक नयन, रंगे त्रिविध रंग गात ।
झखौ विलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात।।५५।।

अब यहां देखना यह है कि यह त्रिविध रंग कौन हैं । ये वही अली वाले 'स्वेत-श्याम रतनार' हैं । वहां 'जिअत मरत झुकि झुकि परत' यहां झखौ विलखि दुरि जात है लखि जल जात लगात ।

चंचलता या गीत-जनित सौन्दर्य --

'रस सिंगार मंजनु किये, कंजन मंजनु दैन ।
अंजनु रंजनु हूं बिना, खंजनु गंजनु नैन।।४६।। क्रमशः- -

तेह-तरेरौ त्यारू करि वत करियत दृग लोल ।
लीक नहीं यह पीक की श्रुति-मनि झलक कपोल।।११३।।
चमचमात चंचल नयन, विच घूंघट-पट झीन ।
मानहु सुरसरिता-विमल, जल उछरत जुग मीन।।५७६।।

अंतिम दोहा कितना सुन्दर है । नायिका ने झीनी सारी को पहन रखा है और घूंघट भीउसने डाल लिया है । सारी के झीने होने के कारण घूंघट में जो नयन चंचल हो रहे हैं और चमक रहे हैं , वे बाहर से भी दिखाई देते हैं। कवि उसे सुरसरि के विमल जल में उछलती हुई मछलियों के समान बताता है । यहां स्वेत सारों स्वच्छ जल के समान है और आंखें चमकती हुई चंचल मछलियों के समान।

हासजनित सौन्दर्य -- नायिका जब विनोदपूर्ण स्थिति में या मान के छूट जाने पर या अन्य किसी कारण से खुश होती है तो यह खुशी उसकी आंखों में भी चमक बनकर स्पष्टतया लक्षित होती है । उस समय नायिका की प्रभापूर्ण आंखें अत्यन्त सुन्दर होती हैं । नीचे ऐसे ही दोहे प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनमें उपर्युक्त स्थिति के चित्र हैं --

सतर भौंहं रूखे वचन, करति कठिन मन नीठि।
कहा करौं ह्वै जाति हरि, हेरि हंसौं हीं डीठि।।१०८।।

नायिका अपनी सखियों के साथ बैठी हैऔर उन्हीं से वह सुनती है कि उसके गवने की बात चल रही है अर्थात् उसे अब प्रियतम के घर जाना पड़ेगा । यह सुनकर उसे प्रियसंयोग की आशा से आनन्द होता है और वह आनन्द कपोलों और आंखों में झलक आता है । नायिका उसे छिपाने की कोशिश करती है,लेकिन वह छिपने वाला कब है ? -- घूंघट ओट करौ यदि सौ,पर चंचल नयन छिपैं न छिपाये। कवि इस रमणीय सौन्दर्य को कितनी सरलता एवं स्वाभाविकता के साथ निम्न-लिखित दोहे में व्यक्त कर दिया है --

चाले की बातैं चलीं सुनत सखिन के टोल ।
गोएं हूं लोइन हंसत,विहंसत जात कपोल ।।१२४।।

नायक और नायिका से कहीं भेंट होती है लेकिन प्रिय के साथ अ लोगों के होने से नायिका उससे बोल नहीं पाती है । पर उसके दर्शन से

प्रसन्नता उसके नयनों में झलक जाती है और वह हृदय पर हाथ रख कर नायक का स्थान अपने हृदय में सूचित कर देती है --

हरसि न बोली, लखि ललनु निरखि अमिलु संग साथु ।
आंखिनु हीं में हंसि धरयौ सीस हियैं धरि हाथु।।१४६।।
नैना नैंक न मानहीं , कितौ कह्यौ समुझाइ ।
तनु मनु हारैं हूं हसैं, तिन सौं कहा वसाई।।१६०।।
रवि बन्दौं कर ज्योरि , ए सुनत स्यामके बैन ।
भए हंसौं हैं सबनु के अति अनखौं हैं नैन।।२२४।।
रमन कह्यौ हंसि रमन कौं रति पियरीति विलास ।
चितई करि लोचन सतर सजल सरोस सहास।।३१६।।
जदपि चवाइनु चीकनी, चलति चहूं दिसि सैन ।
तऊ न छाड़त पुहुन के,हंसी रसीले नैन ।।३३६।।
चलत देत आभार सुनि उहीं परोसिनि नाह ।
लसी तमासे की दृगनु, हांसी आंसुनु माह ।।५५१।।
पड़ी कुटुम की भीर मैं, रही बैठि दै पीठि ।
तऊ पलकु परि जाति इत, सलज हंसौंहीं डीठि।।५६८।।
खेर समीर कौं लेत मानि मन मोदु ।
होत दुहुन के हमनु हीं , वतरसु हंसी विनोदु ।।६३८।।
खिचैं मान अपराध हूं चलि गै बटैं अवैन ।
जुरत डीठि तजि रिस खिसी हंसे दुहुन के नैन।।६६४।।

आंसू-पूर्ण नयन -- स्नेहातिरेक या विरह जनित दु:ख के कारण आंखों में आंसू उमड़ आते हैं और उनसे क्रमश: हर्ष का और विरह विगलित कष्ट की अभिव्यक्ति होती है । हर्ष की अवस्था में तो आंखों का सुन्दर होना स्वाभाविक एवं प्रकृत है, लेकिन वियोग की अवस्था में भी भावनापूर्ण आंखें हृदय को आकर्षित करती हैं । बिहारी नेविरह-जनित-अश्रुपूर्ण नयनों का ही वर्णन किया है --

स्यान-सुरति करि राधिका तकति तरनिजा-तीरु।
अंसुवनु करति तरौंस को खिनकु खरौंहौं नीरु।।२६२।।

प्रिय के विदेश गमन के समय संभावित वियोग से उत्पन्न आंसूपूर्ण आंखों के सौन्दर्य को कवि ने चित्रित किया है --

"विलखि दुमकौं हैं चखनु तिय लखि नयनु वराइ।
पिय गहि करि आऐं गरैं राखी गरूं लगाई।।१६६।।
ललन चलन सुनि पलन मैं अंसुआ झलके आइ।
मई लखाइ न सखिन हूं झूठैं ही जमुहाइ।।३५८।।

अब नित्य आंसू से पूर्ण रहने वाले नेत्रों का चित्र प्रस्तुत है --

नेहु न , नैनन, कौं कछू उजपी बड़ी बलाइ ।
नीर भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ।।३७।।

पूर्वानुरागिनी नायिका की आखें सदा मिलन के अभाव में आंसू से पूर्ण रहती है । वह सखी से कहती है कि यह नेह(प्रेम) नहीं उत्पन्न हुआ है बल्कि कोई व्याधि है, क्योंकि ये आंखें तो हमेशा नीर (आंसू) भरी रहती है, लेनिक फिर भी दर्शन की लालसा रूपी प्यास नहीं बुझती है ।

अलस नयन सौन्दर्य -- प्रौढ़ यौवन की अवस्था में जब स्त्रियों में मद का आविर्भाव होता है उस समय एक प्रकार का आलस उनमें दिखाई पड़ता है । यह गति आदि में तो होता ही है आंखों में भी इसका रंग दिखाई पड़ता है । इस अवस्था में प्रिय के साथ समागम में रात्रि-जागरण के कारण भी उत्पन्न हो जाता है । नायिका रात भर प्रिय के साथ जागती रही है । सबेरे जब वह उठती है तो उसकी आंखें अलसाई हुई रहती हैं और जब उसकी सखी उससे इसका कारण पूछती है तो वह इसे किसी प्रकार का जागरण के बहाने से उत्पन्न बताती है। लेकिन उसे कहते समय उसकी आंखें हंसौंही हो जाती हैं ।

इस आलस्य के कारण उसके नयनों में एक विचित्र अलस सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है । कवि इसीसौन्दर्य को निम्नलिखित दोहे मेंप्रस्तुत करता है --

सही रंगीलैं रति जगैं जगी पगी सुख चैन ।
अलसौं हैं सौं हैंमं कियैं कहैं हंसौं हैं नैन।।५११।।

चितवनि -- नायिका जब अनुरक्त होकर नायक की ओर लज्जावश पूरा न देखकर आंखों को घुमाकर तिरछी चितवनि से देखती है उस समय उसकी अधखुली आंखें

अत्यन्त सुन्दर लगती हैं । एक तो उनमें नायक के प्रति अनुराग की झलक होती है ही दूसरे तिरछीहोने से वे और भी आकर्षणपूर्ण हो जाती हैं । बिहारी ने इस बांकी चितवनि का साक्षात्कार बड़ी सूक्ष्मता से किया था--

तिय,कित कमनैती बढ़ी, बिनु, जिहि भौंहं कमान।
चलचित बेझैं चुकति नहिं बंक विलोकनि-बान।।३५६।।

नायिका की मुस्कराहटपूर्ण-चितवन भी कम आकर्षक नहीं होती। नायिका नायक के यहां से जामन लेकर जा रही है । वह पौरि से घूमकर नायक की ओर मुस्काकर देखती है और वह उसकी इस मुस्कान पर बिक जाता है --

फेरु कछुक करि पौरि तैं, फिरि चितई मुसुकाइ।
आई जावनु लैन,जिय नेहैं चली जमाइ।।१४४।।

नायक के लिए नायिका के काजल छुड़ाने के लिए तेलसे पुंछे नयन भी कम आकर्षक नहीं हैं--

हंसि हंसाइ, उर लाइ उठि, कहि न रुखौं हैं बैन।
जकित थकित ह्वै तकि रहे तकत तिलौंछे नयन।।३१४।।

नयनों की क्षण-क्षण परिवर्तनशील स्थिति से उत्पन्न सौन्दर्य--

नायिका नायक के रूप पर रिझी हुई है और उसके अन्तर का अनुराग बार-बार बाहर नयनों के माध्यम से झलक पड़ता है । इस अवस्था में उसकी आंखों की स्थिति क्षण-क्षण में परिवर्तित होती रहती है और वे बहुत सुन्दर जान पड़ती हैं --

बहके सब जिय की कहत, ठौरु कुठौरु लखैं न।
छिन औरै छिन और से ए छवि छाके नैन।।६।।

भौंह

जिस प्रकार हृदय का आनन्द हंसी बन कर नयनों के रास्ते बाहर छलक पड़ता है उसी प्रकार भौंहों में भी उसका रंग झलक जाता है और उस समय अनुराग के रंग में रंगी भौंह भी बड़ी सुन्दर दिखाई पड़ती है --

कहा लेहुगे खेल हैं, तजौ अटपटी बात ।
नेक हंसौंहीं हैं भई भौंहैं,सौंहैं खात।।४६।।

सतरे भौंह, खरके नयन, करति कठिनु मन नीठि।
कहा करौं,ह्वै जाति हरि हेरि हंसौंही डीठि।।१०८।।

अनुराग की अवस्था में तो भौंहें हंसती सी जान पड़ती ही हैं इसके अतिरिक्त यह उनका किसी-किसी नायिका में जन्मजात स्वभाव भी होता है और इसमें निसर्ग सुन्दर पावन सौन्दर्य का निवास होता है --

भानु करत बरजति न हौं, उलटि दिवावति सौंह।
करी रिसौंही जाहिं भी सहज हंसौंही भौंह।।२७३।।
कपट सतर भौंहें करीं, मुख आसौं हैं बैन ।
सहज हंसौंहें जानि के सौंहें करति न नैन।।४१२।।

जिस प्रकार प्रेम के आनन्द की उमंग में भौंहें हंसौंही हो जाती हैं, उसी प्रकार मान की अवस्था में किंचित् क्रोध के कारण त्यौरी चढ़ जाती है।इस अवस्था में नायिका को नायक के आचरण के कारण कुछ क्रोध तो आता अवश्य है लेकिन तौभी उसके हृदय में नायक के प्रति अनुराग छिन्न-भूल नहीं हो जाता है और इस प्रकार अनुराग तथा क्रोध की मिश्रित स्थिति में नायिका की चढ़ी भौंह भी सुन्दर लगती है । यह मान प्रणयजनित भी तो होता है --

हम हारीं कै कै हहा, पाइनु पास्यौ त्यौरु।
लेहु कहा अजहूं किए तेह तरेस्यौं त्यौरु।।१०७।।
रही पकरि पाटी सु रिस भरे भौंह,चितु नैन।
लखि सपनें तिय आन-रत ,जगत हुं लगत हियैन।।२११।।
सौंहें हूं हेरयौ न तैं, केतो घाई सौंह ।
एहो, क्यों बैठी किए ऐंठी ग्वैंठी भौंह।।५०६।।
नाउं सुनत ही ह्वै गयौ तनु औरे,मनु और।
दवै नहीं चित चढ़ि रह्यौ अबै चढ़ाएं त्यौर।।५६६

अलंकृत सौन्दर्य -- प्रकृति प्रदत्त शारीरिक सौन्दर्य को और उद्दीप्त तथा आकर्षक बनाने के लिए स्त्रियां नाना प्रकार के आभूषणों का उपयोग करती हैं । मूलवस्तु तो शारीरिक सौन्दर्य ही है और उसके अभाव में बाह्य आरोपित अलंकार व्यर्थ होते हैं तथा सौन्दर्य-वृद्धि के स्थान पर वे भद्दापन के ही उत्पादक होते हैं , लेकिन यदि प्रकृति ने सौन्दर्य दिया हो तो इन बाह्य प्रकृति प्रदत्त

सामग्रियों--अलंकार आदि के प्रयोग से सौन्दर्य में निखार अवश्य आती है और यही कारण है कि स्त्रियां अलंकारों का उपयोग करती हैं । स्वभाव से प्रकाशयुक्त हीरा भी कोयले की खान में उतना प्रकाश नहीं दे पाता और खरादे जाने पर वह अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर हो जाता है । हां यह बात दूसरी है कि किसी को गार्डेन (फुलवारी) में अच्छी लगती है और किसी को पार्क (कानन) भिन्न रुचिर्हिलोक: (कमल को सूर्य का प्रकाश अच्छा लगता है और उलूक को रात्रि का अन्धकार । इसी रुचि के कारण आभूषणों के चयन में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है । कालिदास की शकुन्तला पत्रों-पुष्पों और मालाओं से ही सजाई गई है और हर्ष की दमयन्ती विभिन्न सोने चांदी के आभूषणों से । बिहारी ने भी युग-रुचि के अनुकूल अलंकारों तथा वस्त्रों से अपनी नायिका को सुसज्जित किया है ।

हीरा-जरी-बेंदी -- नायिका का मुख गोरा है और उस पर उसमें हीरा-जड़ी बेंदी (टिकुली) लगाई गई है । मुख की गोराई और हीरे की हरीतिमा के संयोग सेमुख-वर्ण-मिश्रण से और भी सुन्दर हो गया है --

तिय मुख लखि हीरा जरी बेंदी बढ़ें विनोद ।
सुत सनेह मानौं लियौ विधु पूरन बुधु गोद।।७०७।।

सींक -- नायिका ने अपनी नाक में नील-जटित सींक पहन रखी है । उसकी नासिका गोरी होने के कारण चंपा की कली के रंग की है और नील मणि सींक से श्याम रंग निकल रहा है । इसी स्थिति में कवि यह उत्प्रेक्षा कर लेता है कि गोरी नासिक में सींक इस प्रकार सुन्दर लग रही है मानों चंपा की कली में बैठ कर काला भ्रमर रस ले रहा हो । भौंरा चंपक-कली पर नहीं बैठता और कवि ने यहां नि:शंक भाव से उसका रसपान करते हुए दिखाकर नायिका की नासिका के अद्भुत सौन्दर्य को व्यंजित किया है --

जटित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नाँक ।
मनौं कली चंपक-कली बसि रसु लेतु निसांक।।१४३।।

टीका -- यह एक प्रकार का जड़ाऊ गोल आभूषण होता है जिससे रत्नों के (उज्ज्वल प्रकाश देने वालेश्र कारण सूर्य की ज्योति के रंग का उज्ज्वल प्रकाश

निकलता है । नायिका ने अपने चन्द्रमा के समान गौर रंग के ललाट पर जड़ाऊ गोल टीका लगाया है । मुख की कांति चन्द्रमा के समान है । गोल टीके से उज्ज्वल प्रकाश निकल रहा है/इसलिए कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानों सूर्य चन्द्रमंडल से आकर उसकी शोभा बढ़ा रहा है । यहां स्पष्ट है कि पीताभ रंग में उज्ज्वल रंग के दिखाई पड़नेसे मुख का सौन्दर्य अवश्य बढ़ गया है --

नीकौ लसतु लिलार पर टीकौ जरितु जराइ।
छविहिं बढ़ावतु रवि मनौ ससि-मंडल मैं आइ।।१०५।।

नथ -- नायिका ने अपनी नासिका में , जो गोरे रंग की है, नथ पहन रखाहै जिसमें उज्ज्वल वर्ण (पीताभ) के दो मोती जड़े या गुंथे हुए हैं । एक तो सुन्दर नासिका हीगोरे रंग की है और दूसरे मोतियों कीझलक के कारण वह हंसती हुई सी दिखाई पड़तीहै --

इहि द्वैहीं मोती सुगद तं नथ गरवि जिसांक ।
जिहिं पहिरैं जग-दृग गसति लसति हंसति सी नाक।।३०६।।

बेसर का मोती -- नायिका ने अपनी नासिका में बेसर नामक आभूषण पहन रखा है जिसमें की मौक्तिक द्युति उसके अधर पर -जो लाल है - पड़ रही है और नायिका उसे पान खाते समय अधर पर लगे हुए चुने को समझ कर पोंछ रही है । लेकिन वह छुटता नहीं है और वह बार-बार प्रयत्न करती है ।लाल अधर पर पीताभ मोती की झलक पड़ने से वह और भी सुन्दर लग रहा है । यहां उसकी इस क्रिया से उसका अज्ञात यौवना होना भी ध्वनित हो रहा है-

बेसर-मोतीदुति-झलक परी ओठ पर आइ ।
भूनौ होइ न चतुर तिय, क्यों पट-पोंछ्यौं जाइ।।१७३।।

तरयौना -- तरयौना और बेसर का वर्णन तो कवि ने किया है लेकिन बेसर अद्भुत सौन्दर्य पर उसकी दृष्टि न रहकर अलंकारों की झाड़ी में उलझ गई है --

अजौं तरयौना ही रह्यां श्रुतिसेवन सब इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग।।२०।।

उरवसी -- उरवसी के सम्बन्ध में भी यही उपर्युक्त बात ही दिखाई पड़ती है । कवि की दृष्टि आभूषण से उत्पन्न चमक आदि पर नहीं है,वह उसकी स्थिति (हृदय में

) पर ही ध्यान लगाए हैं --

तोपर वारौं उरवसी, सुनि, राधिके सुजान ।
तू मोहन कैं उरु वसी ह्वै उरवसी समान।।२५।।

मुक्तावली -- कवि ने मुक्तावली को नायिका की शारीरिक द्युति से कपूर के रंग का अर्थात् उज्ज्वल चित्रित किया है । यहां वास्तव में तो उसकी दृष्टि शारीरिक द्युति पर है और इसीलिए उसने मुक्तावली की द्युति को हरा हुआ चित्रित किया है --

ह्वै कपूर मनिमय रही मिलि तन-दुति मुक्तावलि।
छिन छिन खरी विचच्छिनौ लखति छ्वाइ तिनु आलि।।३६२।।

अंगूठी -- अंगूठी के वर्णन में कवि ने अपनी मार्मिक कुशलता प्रकट की है । नायिका ने नीलम-जटित अंगूठी अपनी अंगुली में पहन रखी है । उसकी अंगुलियां गोरी हैं, नखों से अरुण-ज्योति फूट रही है और उसी में नीलम से नि:सृत श्यामता विराज रही है । इस त्रिविध वर्ण-द्युति के मिश्रण या एकत्र होने से अत्यन्त रमणीय सौन्दर्य उत्पन्न हो रहा है -

जोरी छिगुनी नख अरुनानु, छला श्यामु छवि देह ।
लहत मुकति रति पलकु यह नैन त्रिवेनी सेइ।।३३८।।

गले का बन्द (गुलीबंद) -- यहां पर भी कवि ने गुलीबंद को नायिका की द्युतिया त्वचा की पारदर्शिकता को प्रदर्शित करने के लिए उत्प्रेक्षा के साधन रूप में प्रस्तुत किया है --

खरी लसति गोरे गरैं घंसति पान की पीक ।
मनौ गुलीबंद लाल की ,लाल ,लाल दुति लीक।।४४०।।

पैर के छल्ले -- निम्नलिखित दोहे में नायिका के गट्टे और पैर के छल्लों से उत्पन्न सौन्दर्य के भार से नायक का मन दबकर चूर-चूर हो गया है --

रह्यो ढीठु ढादुसु गहैं, ससहरि गयौ न सूस ।
मुर्यौ न मनु मुरवानु चमि, भौ चूरनु चवि चूस।।२०८।।

अनवटु - ताटंक -- नायिका ने ताटंक और पैर के अंगूठे में अनवट पहन रखा है। कवि ने उसे तरिवन की प्रतिद्वन्द्विता में प्रस्तुत कर सूर्य का पैर पर गिरना

कहा है अर्थात् उसके गोल आकार के अनवट से सूर्य के समान उज्ज्वल ज्योति फूट रही है यहां गोरे अंगूठे पर चमकीला अनवट बहुत रमणीय लग रहा है --

सोहत अंगुठा पाइ कै अनवटु जर्यो जराइ।
जीत्यौं तखिन दुति, सुढरि पर्यो तरनि मनुपाइ।।२०।।

बिछिया -- यहां बिछिया को नायिका के चरनों की सुकुमारता को प्रदर्शित करने के लिए व्यवहृत किया गया है। कवि उससे उत्पन्न सौन्दर्य के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह रहा है --

'अरुन वरन तरुनी चरन अंगुरी अति सुकुमार।
चुवतु सुरंगु रंगुसी मनौ चपि बिछियनु कैं भार।।४१८।।

(किंकिनी- करधनी -- प्रस्तुत दोहे में किंकिनी के वर्ण-आकार के सौन्दर्य को
ध्वनि(
(चित्रित न करके उससे उत्पन्न ध्वनि को ही कवि ने प्रधानता दी है --

पर्यो जोरु, विपरीत रति रुपी सुरत रन धीर।
करति कुलाहलु किंकिनी, गह्यौ मौनु मंजीर।।१२६।।

मुरासा -- नायिका ने अपने कानों में जड़ाऊ मुरासा धारण किया है जिसमें मणि के कण जड़े हुए हैं और वह मणियों की झलक पड़ने से चमक रहा है। छोटे-छोटे मणि-कण अलग-अलग चमक रहे हैं और कवि उत्प्रेक्षा कर लेता है कि कपोल के सुखद स्पर्श से उसे सात्त्विक स्वेद हो आया है और स्वेद विन्दु ही झलक रहे हैं। गोरे कपोलों के पास दमकते हुए मुरासे बहुत सुन्दर लग रहे हैं --

लसै मुरासा तिय-सवन दौं मुकुतनु दुति पाइ।
मानहु परस कपोल कैं रहे स्वेद कन छाइ।।६७३।।

~~ककर्कश आभूषण जनित ध्वनि कर्कश~~

वस्त्र -- वस्त्रों का प्रयोग शरीर-रक्षा और लज्जा-निवारण के लिए तो होता ही है, सौन्दर्यवृद्धि में भी उनका उपयोग होता है । वस्त्रों में प्रवृत्ति के अनुसार सारी, अंगिया और ओढ़नी आदि का प्रचलन था और कवियों ने भी उन्हीं का वर्णन किया है । बिहारी ने भी इन्हीं वस्त्रों का चित्रण किया है --

आंगी -- ह्वै जु छवि तन वसन मिलि, बरनि सकें सुन बैन ।
आंग आये आंगी दुरी, आंगी आंग दुरैन ।।१८६।।

यहां आंगी और शरीर की कान्ति के संयोग से जो सौन्दर्य उत्पन्न होता है, कवि उसका चित्रण तो अवश्य करता है , लेकिन एक बात ध्यान देने की है । वह कभी-कभी बाह्य अलंकरणों को हीन बताता है -- शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा/जरी की ओढ़नी--नायिका ने अपने शिर परजरी की ओढ़नी डाल रखी है। ओढ़नी की किनारी अत्यन्त चमकीली है और मुख तो गोरा है ही । वह उस मुख के ऊपर ऐसा लग रहा है, कि जैसे शरदीय चन्द्र-मंडल के चारों ओर विद्युत का परिवेश हो । यद्यपि उपमान आकाशीय है फिर भी अत्यन्त परिचित होने के कारण सादृश्य-विधान में अत्यन्त समर्थ है और व्यंग्य परिस्थिति का विम्ब जैसे आंखों के सामने उपस्थित हो जाता है । ओढ़नी के परिवेश में मुख की जो शोभा उत्पन्न होती है, वह अत्यन्त रमणीय है । नीचे का दोहा अत्यंत सुन्दर है --

जरी-कोर गोरैं वदन बढ़ी खरी छवि देत।
लसति मनौ विजुरी किए पारद ससि परिवेश।। ३०४।।

पांच तोले की साड़ी -- धनवानों के यहां उद्यान आदि में जल की हल्की झीनी विस्तृत धारा कृत्रिम रूप में निरन्तर गिराई जाती थी और उसके पीछे गवाक्ष निर्मित कर उसमें दीपों की पंक्ति लगाई जाती थी और इन दीपों की ज्योतियां उस झीनी जलधारा के माध्यम से चमकती थीं जो बहुत ही सुन्दर लगती थीं ।

बिहारी की नायिका ने भी हल्की श्वेत झीनी साड़ी, जो पांच तोले की है, पहन रखी है और उसकी गोरी देह दीप के समान उस श्वेत साड़ी

में जगमगाती रही है । कवि कहता है कि इस अवस्था में वह जलधारा के दीप के समान सुन्दर दिखाई पड़ रही है । कवि यहां साड़ी की सुन्दरता और देह की भी तथा दोनों के सम्मिलित रूप सौन्दर्य के यथातथ्य चित्रण में पूर्ण सफल हुआ है --

सहज सेत पंचतोरिया पहिरत अति छवि होति।
जल चादर के दीप लौं जगमगा तितन-जोति।।३४०।।

इसी प्रकार तुरत की धोई हुई धोती के अन्दर नायिका के शरीर की कांति किस प्रकार रसोई घर में जगर-मगर हो रही है , इसे निम्नलिखित दोहे में देखिए --'जगर-मगर' शब्द उसके शरीर के निरन्तर विकीरणशील पूंजीभूत रूप-सौन्दर्य को कितनी स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत कर रहा है --

टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख जोति ।
लसति रसोई के नगर, जगमगर दुति होति।।४७७।।

साड़ी के सौन्दर्य के साथ ही चुनरी के सौन्दर्य का रसास्वाद भी किया जाय । नायिका के शरीर पर पांचरंगों के बुन्दोंवाली चुनरी शोभ रही है और जब उसपर उसके मुख की या शरीर की ज्योति पड़ती है तो उसकी छटा चौगुनी बढ़ जाती है । स्पष्ट है कि ज्योति पड़ने से बुन्दे चमकने लगें होंगे और इस तरह चमक के बढ़ने से सौन्दर्य भी और रमणीय हो गया होगा --

पचरंग-रंग-बेंदी खरी उठै ऊगि मुख जोति।
पहिरैं चीर चिनौटिया चटक चौगुनी होति।।६२६।।

नीला अंचल -- नीले अंचल में नायिका के मुख की सौन्दर्य-राशि किस प्रकार अच्छी लग रही है, इसे देखा जाय । अंचल या साड़ी का रंग नीला है और नायिका का मुख चन्द्रमा के समान है । कवि यहां उस सौन्दर्य को यमुना के श्याम जल में झुलमलाते हुए चन्द्र विम्ब के सौन्दर्य के समान बताता है । यह वर्णन अत्यन्त सुन्दर एवं बिम्बग्राही है --

छिप्यो छबीलौं मुंहु लसै नीलैं अंबर -चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै कालिंदी के नीर।।५३८।।

अनुलेप आदि प्रसाधन -- नायिका की उंगलियों के अरुण नख पर किस प्रकार मेंहदीका रंग अच्छा लग रहा है और उसने नायक के नयनों को बरबस बांध लिया है, । इसी सौन्दर्य को जो नायिका की गोरी उंगलियों तथा उसके मेंहदी के रंग में रंगे अरुणनखों की ज्योति से उत्पन्न हो रहा है, कवि निम्नलिखित दोहे में प्रस्तुत करता है --

गड़े दड़े छवि छाक छकि, छिगुनी छोर छुटैं न ।
रहे सुरंग रंग रंगि उहीं नह दी महतो नैन ।।४४८।।

काजर -- आंखों में स्त्रियां काजल का प्रयोग करती हैं । इस अवस्था में मुख तो गोरा होता है और आंखें अरुण और फिर उसमें काजल की जो एक पतली लम्बी दीर्घ रेखा दिखाई पड़ती है उससे आंखें और भी सुन्दर लगने लगती हैं। साथ ही इससे आंखें चोखी (कांटेदार) भी दिखाई पड़ती हैं । बिहारी ने इसी सौन्दर्य को निम्नलिखित दोहे में लाने का प्रयत्न किया है लेकिन उन्होंने स्पष्ट रूप से कुछ कहा नहीं है संकेत मात्र दे दिया है --

सोहतु संग समान सौं दहै कहै सब लोगु ।
पान-पीक ओठनु बनै काजर नैननु जोगु।।२६७।।

इसी दोहे में पान-पीक के लाल रंग में रंगे नायिका के अरुण अधरोष्ठों का भी वर्णन कवि ने कर दिया है ।

बेंदी -- इसका वर्णन तो मुख के सन्दर्भ में कर दिया गया है। अत: उसे यहां प्रस्तुत करना पिष्टपेषण मात्र होगा ।

अंगराग -- कवि ने नायिका के शरीर पर लगे अंगराग का वर्णन तो किया है लेकिन यहां भिन्न प्रणाली का अनुसरण किया गया है और अंगकांति को प्रधानता देने के लिए दर्पण पर लगे भाप की छाया के समान सहज अंगकांति को मलिन करने वाला बताया गया है --

करतु मलिन आछी छविहिं, तरतु जु सुख सहज विकासु ।
अंगरागु अंग नु लगै, ज्यौं आरसी उसासु ।। ३३४।।

दिठौना - गोदना -- इनका भी वर्णन मुख के प्रसंग में करदिया गया है -
महावर -- इसका भी चित्रण पैरों के प्रसंग में किया गया है --

केशर -- का रंग भी पीला होता है और बिहारी की नायिका भी गोरे रंग की है । उसने अंगों में केसर का मर्दन किया है । आज के पाउडर के समान पहले लोग केशर का ही प्रयोग करते थे । उन दोनों की द्युति समान होने से केशर का रंग भी नायिका की अंकाे ि में ही मिल गया है । उससे नि:सृत सुगंधि से ही यह मालूम होता है कि नायिका ने केशर लगाया है --

कंचन तन-घन-वरन वर, रह्यौ रंगु मिलि रंग।
जानी जात सुवास हीं केसरि लाई अंग।।३५६।।

सुगन्धि -- सखी नायक या अन्य सखी से नायिका की शारीरिक कांति (गोराई) तथा सुगन्धि की प्रशंसा कर रही है । वह कहती है कि स्वर्णाभाती या पीली चमेली में छिपी नायिका को कौन ढूढ़ पाता यदि उसकी शारीरिक गंध निकल कर चारों ओर न फैल जाती । अर्थात् वह उसके शरीर की नैसर्गिक सुगन्ध चमेली की सुगंधि से भी बढ़कर है --

कहि लहि कौनु सकै दुरी सौ न जाइ मैं जाइ ।
तनकी सहज सुवास वन देती जौ न बताइ।।१३३।।

शारीरिक गुण -- शारीरिक गठन और आकार के कारण तो सौन्दर्य उत्पन्न होता ही है साथ ही उसके अंगों से निकलने वाली कांति, लावण्य एवं चेष्टाओं और मुद्राओं से भी सौन्दर्य उत्पन्न होता है । इसके अतिरिक्त विभिन्न भावों के उदय से उत्पन्न अंगभंगी से भी नारी का सौन्दर्य रमणीय दिखाई पड़ता है ।

कान्ति -- केशर, चंपक, पुष्प और स्वर्ण अपनी कान्ति के कारण सुन्दर होते हैं , लेकिन नायिका के अंगों से उत्पन्न कांति के सामने ये तुच्छ हैं --

केसरि केसरि क्यों सकै, चंपकु कितकु अनूपु ।
गात-रूपु लखि जातु दुरि जातु रूप कौ रूप।।१०२।।

नायिका की शारीरिक गठन क्षीण है लेकिन उसके शरीर से कांति की किरणें फूट रही हैं और उस ज्योति-पुंज के कारण शरीर से पतली होने पर भी उसकी देह भरी हुई सी दिखाई पड़ रही है । कवि का निरीक्षण यहां अत्यन्त सूक्ष्म है --

अंग अंग छवि की लपट उपटति जाति अछेह ।
खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी सी देह ।।६६१।।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित दोहे भी कांति सम्बन्धी ही हैं :-

देखी सोन, जुही फिरति सोन जुही सैं अंग।
दुति लपटनु पट सेत हूं करति बनौटी रंग।।३३०।।

दुति --

वाहि लखैं लोहन लगै कौन जुवति की जोति।
जाकै तन की छाहं-ढिंग जोन्ह छाहं सी होति।।१०६।।
लै चुमकी चलि जाति जित जित जल - केलि अधीर।
कीजत केसरि नीर से तित तित के सरि नीर ।।१५२।।
निशि अंधियारी ,नील पटु पहिंरि,चली पियगेह।
कहौ दुराई क्यों दुरै दीप-सिखा सी देह।।२०७।।
सघन कुंज घन घन-तिमिरु अधिक अंधेरीराति।
तऊ न दुरि है स्याम वह दीप सिखा सी जाति।।२६६।।
डीठि न परतु समान-दुति कनकु कनक सैं गात ।
भूषन कर करकरु लगत परसि पिछाने जात।।२३३।।

शोभा -- रूपयौवन , लालित्य और सुखभोग आदि से सम्पन्न शरीर की सुन्दरता को शोभा कहते हैं --

तन भूषन अंजन दृगन पगन महावर-रंग।
नहि सोभा कौं साजियतु , कहिवैं हीं कौं अंग।।२३६।।

लावण्य --

रही लटू ह्वै लाल , हौं लखि वह बाल अनूप ।
कितौ मिठास दयौ दई इतैं सलोनैं रूप ।।४७३।।

सुकुमारता --

मैं बरजी कै वार तूं , इत कत लेति करौट।
पंखुरी लगैं गुलाब की तरि है गात खरौट।।२५६।।
भूषन-भारु संभारिहैं,क्यों इहिं तन सुकुमार ।
सूधे-पाइ न धर परैं सोभा हीं कैं भार ।।३८२।।

यौवन छटा -- यौवनागम के समय एक ओर तो शैशव धीरे-धीरे जाने लगता है और दूसरी ओर यौवन का प्रवेश होता है। लेकिन इन दोनों के समयों केलिए कोई विभेदक नही है। कुछ समय तक दोनों की मिली-जुली स्थिति रहती है। इस समय नायिका में कुछ तो किशोरावस्था का प्रभाव होता है और कुछ यौवन का। यह मिली-जुली स्थिति अत्यन्त सुन्दर होती है। इस समय नायिका में जो सौन्दर्य होता है वह अत्यन्त पावन, भोली एवं हृदय को आकर्षित करने वाला होता है। अतः सभी कवियों ने इसका जमकर वर्णन किया है। बिहारी के एकाध चित्रों को भी देखा जाय --

देह दलहिया की बढ़ै ज्यौं ज्यौं जोवन-जोति।
त्यौं त्यौं लखि सौत्यौं सबै बदन मलिन दुति होति।।४०।।
छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जो बनु अंग।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ता दता रंग।।७०।।
सोन जुही सी जगमगति अंग अंग जोवन जोति।
सुरंग कसूंभी कंचुकी दुरंग देह-दुति होति।।१६०।।

विकास --

लाई, लाल, विलोकिये, जिय की जीवन मूलि।
रही मौन के कोन मैं सोन जुहीसी फूलि।।६१३।।

पारदर्शिकता --

खरी लसति गोरैं गरैं धंसति पान की पीक।
मनौ गुलीकंद-लाल की, लाल लाल दुति लीक।।४४०।।

पल पल परिवर्तित सौन्दर्य --

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।३४७।।

मुद्रा-जनित सौन्दर्य -- मुद्रा से तात्पर्य मानव की उस शारीरिक स्थिति से है जिसमें वह अपने अंगों से इस प्रकार की चेष्टा करे जिससे एकविशेष प्रकार के आकार की सृष्टि हो अर्थात् मनुष्य के अंगों के विभिन्न प्रकार के आकारों की स्थिति में होने से जो एक समन्वित आकार बनता है, वही मुद्रा है। यह विशेष आकार या मुद्रा भी सौन्दर्यात्मक होती है। अतः कवियों ने इसका

भी वर्णन किया है । जब हम विहारी की रचना में इस दृष्टि से विचरण करते हैं तो हम देखते हैं कि कवि ने एक से बढ़कर एक सुन्दर मुद्राओं का सुन्दर चित्रण किया है । जिस प्रकार एक चतुर चित्रकार अपने हल्के हाथों से अत्यन्त सुन्दर चित्रों को चित्रित कर देता है, बिहारी भी उसी पकार समर्थ हैं ।

नायिका अपने बालों को बांध रही है और वह दोनों हाथों से उन्हें सम्हाले हुए हैं । साथ ही उसने शिर के वस्त्र को भुजमूलों पर हटा दिया है जिससे ग्रीवा आदि अवयव दिखाई दे रहे हैं । बालों को सम्हालने में दोनों भुजायें पीछे की ओर उलट दी गई हैं । अब इस विशेष स्थिति से जो मुद्रा बनती है वह अत्यन्त ही सुन्दर लग रही है और कवि कह रहा है कि --

'काको मन बांधे न यह जूरो बांधनि हार'।
कर समेटि कच भुज उलटि खएं सीस-पटु टारि ।
काको मन बांधे न यह, जूरो बांधनि हार।।६८७।।

सद्य: स्नाताओं का रूप-चित्रण प्राय: सभी कवियों ने किया है क्योंकि इससमय स्त्रियों का रूप बहुत मोहक हो जाता है । स्नान के कारण वस्त्र भीग जाते हैं और सारे अंगों में चिपक जाते हैं। परिणामत: सूखे कपड़ों में ढंके अंगों की झलक स्पष्ट रूप से मिलने लगती है और यही कारण है कि कवियों की रूप-लोभी आखें इस ओर अवश्य आकर्षित हुई हैं । बिहारीने भी सद्य:स्नाता का वर्णन किया है जो बहुत सुन्दर बन पड़ा है ।

सरोवर या नदी में स्नान करने के पश्चात् जब युवतियां बाहर आने लगती हैं तो उस समय वस्त्रों के शरीर के अंगों से चिपक जाने के कारण वक्षस्थल दिखाई देने लगता है और लज्जावश उरोजों को छिपाने के लिए वे अपनी बाहों को दोनों ओर से ले आकर वस्त्र के अन्दर छाती पर मोड़ लेती हैं जिससे वे छिप जाते हैं और एक विशेष प्रकार की मुद्रा बन जाती है । कवि ने इसका कितना सुन्दर एवं स्वाभाविक चित्रण एकाध हल्की रेखाओं से ही कर दिया है ।

बिहंसति, सकुचति सी , दिएं , कुच-आंचर-बिच बांह।
भीजें पट तट कौं चली , न्हाइ सरोवर मांह ।।६९३।।

चित्र की स्पष्टता एवं स्वाभाविकता के सम्बन्ध में अधिक कहना व्यर्थ होगा। स्पष्ट है कि युवती यदि नन्द-गांव की न होगी तो किसी अन्य गांव की तो अवश्य होगी

ही । यदि इस मुद्रा की वारीकी देखनी हो तो देव की निम्नलिखित सद्य:स्नाता के चित्र से तुलना करके देखिए --

पीत रंग सारी गोरे अंग मिलि गई देव,
श्रीफल उरोज आभा, आभासै अधिक सी ।
छूटी अलकनि झलकनि जल कननि की ,
बिना बेंदी वन्दन वदन शोभा विकसी ।
तजि तजि कुंज तेहि ऊपर मधुप पुंज ।
गुंजरत मंजुल बोलै वाल पिक सी ।
नैननि नचाय नैकु नीबी उकसाय हंसि,
ससि मुखी सकुचि सरोवर तैं निकसी ।

देव जिस स्थिति का चित्रण इतना हाथ-पांव मारने पर भी उतनी स्वाभाविकता से न कर सके उसको बिहारी ने केवल `कुच आंचर बिच बांह` से के द्वारा ही कर दिया है । साथ ही देव का चित्र अश्लील हो गया है जबकि बिहारी की नायिका भारतीय मर्यादा के अनुरूप लज्जा-शील सरल रमणी के रूप में दिखाई पड़ती है । उपर्युक्त मुद्राओं के चित्रण मे तो कवि ने एकाध अस्फुट, रेखाओं का भी प्रयोग किया है । लेकिन उसमे बिना रेखा के भी चित्र को उभार देने की शक्ति है।--

नायिका छींके के ऊपर भुकी हुई है । हाथों से छींके के पकड़ने और आगे की ओर उभकने से उसके स्तन आगे की ओर उभक आये हैं । नायक इसे दूर से देख रहा है और कहता हैकि हे नारी तूं हांड़ी को न तो छींके पर रख ही और न उतार ही । जिस तरह तुम स्थित हो उसी तरह बनी रहो। नायक इस मुद्रा के सौन्दर्य पर रीझा हुआ है और वह इसको बिगड़ जाने देना नहीं चाहता। अत: ऐसा कह रहा है । कवि ने बिना सीधी रेखा के ही चित्र को प्रस्तुत कर दिया है । इसी प्रसंग में निम्नलिखित दोहा प्रस्तुत किया जा रहा है --

अहे, दहेंड़ी जिनि धरै , जिनि तूं लेहि उतारि ।
नीकैं है छींकै छुवै, ऐसैंई रहि, नारि।।६६६।।

अब थोड़ा उस सौन्दर्य विशेष पर भी दृष्टिपात कर लेना उचित ज्ञात होता है जो अवस्था विशेष में उद्भूत होता है। वय:सन्धि का सौन्दर्य सरल भोलापन लिए

अत्यन्त पावन होता है । कवियों ने इस स्थिति का बड़ी तत्परता से चित्रण किया है । कहा जाता है कि बिहारी की प्रतिभा को इस अवस्था विशेष से सम्बन्धित दोहे प्रस्तुत करने के पुरस्कारस्वरूप ही विकसित होने का विस्तृत क्षेत्र मिला था । जयसिंह नव-विवाहिता पत्नी में , जो अभी कली के रूप में ही थी, इतने आसक्त हो गये थे कि महल के बाहर आना भी छोड़ दिया था और साथ ही यह आज्ञा भी दे दी थी कि उनकी इस स्थिति में जो कोई व्यवधान डालेगा उसकी खैर नहीं ।

सभी लोग राज्य-कार्य के रुक जाने से व्याकुल हो गये थे , लेकिन कोई वहां जाने का साहस नहीं करता था । अन्त में यह काम बिहारी को सौंपा गया और बेचारे बिहारी ने निम्नलिखित दोहा किसी प्रकार उसके पास भेजवाया और तब जाकर उन्हें होश हुई और साथ ही बिहारी के भाग्य का द्वार भी उन्मुक्त हो गया । इस दोहे में रानी की भी अल्पवयस्कता तथा अविकसित अवस्था का चित्र है।

नहि परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहि काल ।
अली , कली ही सौं बंध्यौ , आगें कौन हवाल।।३८।।

इसी प्रकार उन्होंने वय: सन्धि की अवस्था में नायिका में उत्पन्न सौन्दर्य का भी बड़ा सुन्दर चित्रण किया है --

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता-रंग।।७०।।

---o---

पुरुष सौन्दर्य

जिस प्रकार काव्य में कवियों ने स्त्री के सौन्दर्य को महत्व दिया है उसी प्रकार पुरुष-सौन्दर्य का भी चित्रण किया है लेकिन इन दोनों में एक महत्वपूर्ण अन्तर दृष्टिगोचर होता है। जिस तत्परता से रमणी के रूप-सौन्दर्य का चित्रण उन्होंने किया है उस तत्परता से पुरुष-सौन्दर्य का नहीं । इसके मूल में यही कारण है कि नारी का सौन्दर्य अपेक्षाकृत अधिक कोमल और लुभावना होता है। अत: कवियों की अन्तर्वृत्ति उसके चित्रण में विशेष रमी है । उन्होंने पुरुष के स्थूल सौन्दर्य और अपेक्षा उसके शील-सौन्दर्य का चित्रण विशेष रूप से किया है। उसके शील का चित्रण अधिकांशत: उसके व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत कर किया गया है, अर्थात् उसके कर्म के सौन्दर्य को ही चित्रित कर पुरुष का शील-निरूपण किया गया है और उन्होंने तो विशेष रूप से पुरुष को युद्धक्षेत्र में उपस्थित कर उसके शौर्य-पूर्ण कार्यों को ही उसके समर्थन में उपस्थित किया है। लेकिन बाह्य वीरता से कहीं अधिक आन्तरिक वीरताजनित सौन्दर्य हमें आकर्षित करता है। संयम, अहिंसा, क्षमा, दया, कष्ट सहिष्णुता, कर्त्तव्यपरायणता, परदु:ख कातरता , आदर्श के लिए जीवन का विसर्जन, सत्याग्रह, सेवापरायणता और त्याग आदि गुणों से युक्त होने पर पुरुष सौन्दर्य निखर उठता है ।

आधुनिक युग में तो इन्हें और भी महत्व दिया गया है। क्योंकि इस आणविक युग में युद्धस्थल में पुरुष को शौर्य दिखलाने के लिए कम अवकाश है । अत: आत्मकल्याण या लोककल्याण में ही पुरुष का वास्तविक सौन्दर्य देखा जाने लगा है । लेकिन यह कोई नई बात नहीं है । अति प्राचीन काल से ही इनका महत्व आंका जाता रहा है। मध्यकाल में राजनीतिक अव्यवस्था एवं स्वदेशी शासन के छिन्न-मूल हो जाने से उत्पन्न हीन-भावना की ग्रन्थि के कारण अधिकांश कवियों में अपने शौर्य का गीत गाने की शक्ति न रही । साथ ही उस समय की विलासप्रियता ने कवियों को इस दिशा से विमुख किया है और तत्कालीन कवि अपनी सारी शक्ति बटोर कर नारी के रूप-सौन्दर्य-चित्रण में ही जुट गये । परिणामत: उनके पुरुष के शील-चित्रण को जैसे लकवा मार गया । अत: रीतिकाल

के प्राय: सभी कवि पुरुषों की कुंचित अलकों बांकी कटाक्ष, सलोनी मूरति, और शृंगारिक चेष्टाओं के चित्रण में ही उलझे रह गये । नायिका के कुच-कुच के वर्णन से उन्हे अवकाश ही कहां था?

जहां तक बिहारी के पुरुष-सौन्दर्य के वर्णनका प्रश्न है, उनकी भी लेखनी उपर्युक्त नियमों से ही नियंत्रित दिखाई पड़ती है । इन्होंने पुरुष सौन्दर्य का चित्रण बहुत कम किया है और जो थोड़ा सा उनकी सतसई में मिलता भी है, वह भी अस्फुट रूप मे । दोहों में उसका विस्तृत वर्णन सम्भव नहीं था लेकिन यदि उनकी दृष्टि इस दिशा में रमी होती तो वे अवश्य ही इसके सुन्दर चित्र प्रस्तुत करने में सफल हुए होते । इसके प्रमाण उनके कुछ ही दोहे प्रस्तुत करते है-

सौन्दर्य -- कृष्ण का शरीर श्यामवर्ण का है और उन्होंने पीताम्बर पहन रखा है। वह इस प्रकार सुन्दर लग रहा है जैसे नीलमणि के पहाड़ पर प्रात:कालीनसूर्य का प्रकाश पड़ रहा है। श्याम एवं पीत रंग के सम्मिलन से जो सौन्दर्य उत्पन्न हो रहा है कवि ने उसी का चित्रण करने का प्रयत्न किया है --

सोहत ओढ़ै पीतु पटु स्याम, सलौनैं गात ।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतपु पर्यौ प्रभात।।६८६।।

सज्जागतसौन्दर्य -- युगानुकूल परिस्थिति तथा रुचि के अनुसार पुरुषों एवं स्त्रियों के आभूषणों मे परिवर्तन होता रहता है । आजकल तो आभूषण का प्रचार पुरुषों में बहुत कम हो गया है लेकिन प्राचीन समय में वे भी आभूषण पहना करते थे । आभूषणों धातु निर्मित होते ही थे प्रकृति के क्षेत्र से भी पुष्पादि का आभूषणों के रूप में प्रयोग होता था। कृष्ण के सम्बन्ध में भी यही बात परम्परा से चली आई है कि वे मोरपंख का मुकुट पहना करते थे और पीली काछनी भी । मुरली या वंशी भी उनके हाथ में सदा विराजमान रहती थी । कवि उनके इसी रूप पर मुग्ध है और अपने हृदय में सदा उसी मूर्ति के जो मोर का मुकुटपहने हो, कटि में काछनी शोभा दे रही हो, हाथों में मुरली हो, विराजने का आकांक्षी है --

सीस-मुकुट , कटि-काछनी, कर-मुरली ,उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ,बिहारी लाल।।३०१।।

इसी तरह कहीं गुंजों की माला से उत्पन्न सौन्दर्य पर ही उसका मन रीझ गया है --

सखि, सोहति गोपाल कें उर गुंजनु की माल ।
बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल।।३१२।।

जिस प्रकार स्त्रियों के हाव-भाव एवं चेष्टाओं से आकर्षक सौन्दर्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार पुरुषों के हाव-भाव एवं चेष्टाओं से भी सान्दर्य उत्पन्न होता है । कवि निम्नलिखित दोहे में कृष्ण की एक चेष्टा का वर्णन कर रहा है--

नायिका ने वन में या किसी अन्य स्थान में उन्हें देखकर मुग्ध हो गई है और वह उसके सौन्दर्य की प्रशंसा तथा अपने मन के उलझ जाने की बात सखी से कह रही है कि भृकुटी की मटक,पीतपट की चटक, लटकती चाल, एवं चंचल नेत्रों की चितवन से बिहारी लाल ने हमारा चित्तचुरा लिया है । इसमें आंखों की चेष्टाओं , पीताम्बर की शोभा तथा डगमगाते हुए पैरों से चलने के कारण जो सान्दर्य उत्पन्न हुआ है उसी पर नायिका का मन मुग्ध है और कवि उसी सौन्दर्य को प्रस्तुत करना चाह रहा है --

भृकुटी -मटकनि, पीतपट - चटक, लटकती चाल।
चलचख-चितवनि चोरि चितु लियौ बिहारी लाल।।३०२।।

मुद्राजनिक सौन्दर्य -- नायक तम्बाकू पी रहा है उस समय उसने तम्बाकू पीने के लिए ओठों को ऊंचा किया है । उसकी भौंहें तथा आंखें चल रही है । नायिका उसके इस सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो रही है और कवि उसी सौन्दर्य को अभिव्यक्ति देना चाहता है --

ओठु उंचे , हांसी-भरी दृग भौं हनु की चाल ।
मो मनु कहा न पी लियौ, पियत तमाकू,लाल।।६१४।।

जिस प्रकार नायक का शारीरिकसौन्दर्य आकर्षित करता है उसी प्रकार उसके शौर्यपूर्ण कामों तथा वीरता के कारण भी एक प्रकार का शील सौन्दर्य उत्पन्न होता है । यह शील सौन्दर्य भी कम आकर्षक नहीं होता है । युगानुकूल परिस्थिति के कारण दृष्टि के परिमित हो जाने से बिहारी ने इनका वर्णन बुहत कम किया है लेकिन जो कुछ किया है वह अच्छी है --

प्रलय-करन बरषन लगे जुरि जलधर इकसाथ ।
सुरपति-गरबु ह्यौं हरषि गिरिधर गिरि धरिहाथ।।५४१।।

व्रज के ऊपर प्रलय काल की घनघोर घटा घिर आई है और मूसलाधार वृष्टि हो रही है । अब मालूम हो रहा है कि सारा व्रज ही डूब जाएगा । सभी व्रजवासी भयभीत हो रहे हैं। उसी समय कृष्ण गोवर्धन को धारण कर व्रज की रक्षा करते हैं । यहा कवि ने एकाध रेखाओं में ही कृष्ण के उस व्यक्तित्व को रूप दे दिया है जो परोपकार की भावना से प्रचण्ड पौरुष तुच्छ जलधि के समान उमड़ उठता है ।

इसी प्रकार उन्होंने मिजरिजा जयसिंह के पौरुष का भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। राजा जयसिंह बड़े बहादुर थे और बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में उन्होंने विजय प्राप्त की थी। वीरता के साथ ही उनकी बुद्धिमत्ता की भी उन्होंने बड़ी सराहना की है । उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित दोहे प्रस्तुत किए जा सकते हैं --

सामां सेन, सयान की सबै साहि कैं साथ ।
बाहुबली जयसाहिजू, फते तिहारैं हाथ ।।७१०।।
यौं दल काढ़े बलक तैं तैं, जयसिंह भुवाल ।
उदर अघासुर कैं परैं ज्यौं हरि गाइ , गुवाल।।७११।।
घर घर तुरकिनि , हिंदुनी देतिं असीस सराहि।
पतिनु राखि चादर , चुरी तैं राखी,जयसाहि।।७१२।।

जिस प्रकार बिहारी ने जयसिंह के शौर्यपूर्ण कर्मसौन्दर्य की झाकी प्रस्तुत की है उसी प्रकार उन्होंने उनकी दानशीलता का भी गुणगान किया है --

चलत पाइ निगुनी गुनी धनु मनि-मुक्तिय - माल।
मैं ट होत जयसाहि सौं भागु चाहियतु भाल।।१५६।।

अनुभावपरक-सौन्दर्य

जिस समय अन्त:करण में भाव सुसुप्तावस्था में रहते हैं उस समय हृदय मुक्त और निर्मल रहता है लेकिन उनके उद्बुद्ध होने पर हृदय में विकार उत्पन्न होता है और उसकी प्रतिक्रिया शरीर के बाह्य अवयवों में लक्षित होती है । यह भाव प्रेरित लक्ष्यमाण वाह्य प्रति क्रिया ही अनुभाव है । यह उसके नाम से भी ध्वनित हो रहा है । भाव के अनु अर्थात् पश्चात् जो उत्पन्न हो वह अनुभाव है या भाव का अनुभाव करानेवाला अनुभाव कहा जाता है । इस तरहअनुभाव भाव प्रेरित वक्रता ही है ।

इस सम्बन्ध में एक और बात ध्यान देने की है। कुछ लोग चेष्टा और अनुभाव में कोई अन्तर नहीं मानते और दोनों को ही अनुभाव के अन्तर्गत ही रखते हैं । लेकिन यह दृष्टि साधार नहीं है । यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो यह विदित होगा कि चेष्टा के दो रूप हैं । भाव प्रेरित चेष्टा और अनायास स्वाभाविक रूप में उत्पन्न । यदि कोई नायिका नायक के रमणीय सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपनी वचन-भंगी या अंग संचालन के द्वारा उसे कोई संकेत देने की चेष्टा कर रही है तो उसे भाव प्रेरित चेष्टा कहेंगे क्योंकि उस समय उसके हृदय में काम भाव का अविर्भाव हो चुका है औरयह चेष्टा उसी की प्रतिक्रिया है ।

अब चेष्टा के उस रेखा को देखा जाय जो भाव प्रेरित नहीं है । मान लीजिये कोई बच्चा है वह उठने का प्रयत्न करता है और गिर-गिर पड़ता है। उसका बार-बार- गिर-गिर कर भी उठने का प्रयत्न चेष्टा के इस रूप के अन्तर्गत आयेगा। क्योंकि उस समय उसके हृदय में कोई भाव वर्तमान नहीं है। यह भाव भी सापेक्ष शब्द है । यदि सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया जाय तो हम देखेंगे कि किसी भी स्पन्दन के मूल में जीवित तत्वों के -भाव वर्तमान मिलेगा ही । बिना उसके स्पन्दन या चेष्टाओं के मूल में भाव दृष्टिगोचर होता है। अत: हमारा यह कहना कि अमुक चेष्टा भाव प्रेरित है और अमुक भाव प्रेरित नहीं है, नितान्त भ्रममूलक हो सकता है । अत: ऊपर जो प्रेरित चेष्टा की चर्चा की गई है, उसका तात्पर्य यह है कि अत्यन्त उद्बुद्ध भाव की प्रतिक्रिया स्वरूप जो चेष्टा हो वह भाव प्रेरित और जो अनायास या साधारण इच्छा भाव से हो वह अनायास या स्वाभाविक चेष्टा कही

जायेगी । भाव प्रेरित जो चेष्टा होगी उसे तो हम अनुभावों के अन्तर्गतले सकते हैं और जो अतिरिक्त है उसे चेष्टा मात्र कहेंगे । प्रथम तो सौन्दर्य-शील होती है। दूसरी परिस्थिति विशेष में रमणीय हो सकती है । यही कारण है कि अनुभावों के आंगिक , वाचिक और सात्विकादि भेद किये गये हैं । ये अनुभाव उद्दीपन का कार्य करते हैं , तथा रस-निष्पत्ति में इनका पूर्ण योग होता है। साथ ही इनके कारण शारीरिक सौन्दर्य में भी वृद्धि होती है। अत: सौन्दर्य-निरूपण के प्रसंग में कवियों ने इसका पूर्णरूप से चित्रण किया है ।

जहां तक बिहारी का प्रश्न हैं उन्हें सर्वाधिक सफलता अनुभाव-विधान में ही मिली है । कवि अन्यत्र तो कहीं-कहीं रूढ़ि पालन के फंदे मेंउलभ गया है। अत: उसके हाथ उक्ति वैचित्र्य और ऊहा मात्र ही हाथ लगे हैंलेकिन अनुभावों के चित्रण में उसने अपनी प्रतिभा का समुचित उपयोग किया है । उसमें उसकी मौलिकता और सूक्ष्म निरीक्षण सर्वत्र स्पष्ट रूप में फलक रहे हैं ।

विभिन्न भावोंके अनुभाव भी विभिन्न होते हैं । उदाहरण के लिए वीर भाव और शृंगार भावको लिया जा सकता है ।वीर भाव के उद्बुद्ध होनेपर भुजाएं फड़कने लगती हैं ।

वक्षस्थल फूल जाता है । भौंहें चढ़ जाती हैं और आंखें लाल हो जाती हैं । हुंकार करना, दांत पीसना और ओठ काटना भी इसमें देखे जाते हैं । लेकिन जब शृंगार भाव का उदय होगा तो दूसरे प्रकार की ही प्रतिक्रिया होगी। इसमें भ्रू संकेत, अंगड़ाई कानों में लाली, स्वेद , कंप, रोमांच आदि अनेक प्रकार के अनुभाव लक्षित होंगे ।

अनुभाव-सौन्दर्य --

जैसा कि हम पहले ही कह आए हैं कि भिन्न-भिन्न भावों की प्रतिक्रियायें भी भिन्न-भिन्न रूपों में होती हैं , अत: जो कवि जिस भाव की व्यंजना करना चाहेगा या जिस भाव की स्थिति का रूप-चित्रण करना चाहेगा उसको उसी के अनुरूप अनुभावों का चित्रण भी करना पड़ेगा और जोजितनी सूक्ष्मता और स्वाभाविकता के साथ अनुभावों का अंकन करेगा उसे उतनी ही सफलता मिलेगी ।

बिहारी ने मुख्य रूप से शृंगार को ही अपनी लेखनी का विषय बनाया है और उसमें भी वियोग को मुख्य स्थान दिया है । अत: उनकी रचना में उसी के अभिव्यंजक अनुभाव हीवर्तमान हैं । कामभाव के आविर्भूत होने पर विभिन्न स्थितियां उत्पन्न होती हैं । अत: विभिन्न प्रकार के अनुभावों का होना भी स्वाभाविक ही है। कवि ने इनका निरीक्षण बड़ी सूक्ष्मता से किया है और उसे अन्य की अपेक्षा इस पक्ष में अधिक सफलता मिली है । बिहारी की कवित्व-शक्ति की महिमा अनुभाव-चित्रण पर ही सर्वाधिक निर्भर है । आगेहम उनके अनुभावों के सौन्दर्य का दर्शन करेंगे ।

प्रिय यदि पास में ही अभी हो लेकिन वह प्रवास के लिये तैयार हो रहा हो तो उससमय भावी वियोग की सम्भावना से दु:ख होना तथा आंखों में आंसू आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक है । कवि ने इस स्थिति का कैसा सुन्दर वर्णन नीचे के निम्नलिखित दोहे में किया है --

ललन-चलनु सुनि पलनु में अंसुवा झलके आइ ।
भई लखाइ न सखिनु हूं झूठें हीं जमुहाइ।।३५८।।

नायिका अपनी सखियों के साथ बैठी है । उसी समय उसे प्रिय के परदेश गमन के लिये उद्यत होने का सन्देश मिलता है । अब उससे नायिका का वियोग निश्चय ही होगा ऐसी सम्भावना के कारण नायिका की आंखों मे आंसू उमड़ आते हैं, लेकिन वह उन्हें छिपाना चाहती है । अत: वह झूठे ही उन्हें छिपाने के लिए जम्हाई लेने लगती है । यहां आंसू भावीवियोग-जनित दु:ख-भाव की कैसी सफल व्यंजना कर रहे हैं और कृत्रिम जम्हाई गोपन-भाव की ।

स्त्रियों का यह स्वभाव होता है कि वे हृदय में आकर्षित होने पर भी बाह्य रूप में अपनी अनिच्छा प्रकट करती हैं । लेकिन हृदय स्थित काम-भाव की प्रतिक्रिया तो बाह्य रूप में हो ही जाती है । कवि ने इस स्थिति का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से अनुभावों के द्वारा किस प्रकार से की है --

नासा मोरि , नचाइ जे करी ककी की सौंह ।
काँटे सी कसकै ति हियं गड़ी कंटीली भौंह।।४०६।।

नायक ने एकान्त में अवकाश पाकर नायिका से कुछ छेड़-छाड़ की । स्त्रियों की

स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार उसने काका की सौंह (शपथ) खाकर कहा कि मुझे यह छेड़-छाड़ अच्छी नहीं लगती। लेकिन नायिका भी नायक के प्रति अनुरक्त हो गई थी । परिणामस्वरूप सात्विक भाव के कारण उसकी भौंहें कंटकित हो गई और नायक ने उसे ताड़लिया । अत: वह उसी का स्मरण कर उपर्युक्त शब्द कह रहा है । भौंहों का कंटकित होना उसके हृदय-स्थित-स्नेह भाव को व्यंजित या अनुभव कर रहा है । अत: अनुभाव है और स्वाभाविक होने से रमणीय तथा रूपसौन्दर्य के उत्कर्ष में भी योग दे रहा है ।

एक स्थान पर बिहारी ने इसी से कुछ मिलता-जुलता वर्णन गवने जाने वाली नायिका के सम्बन्ध में किया है । नायिका सखियों के साथ बैठी है। उन्हीं के द्वारा यह बात उस मालूम होती है कि उसके गवने की बात चल रही है इसपर प्रिय से मिलने की सम्भावना से उसे प्रसन्नता होती है और यह उसकी आंखों में झलकने लगती है लेकिन वह उसे छिपाने का प्रयत्न करती है । लेकिन कहीं छिपाने से वह छिपता है ? यहां सम्भावित मिलन से उत्पन्न आनन्द की प्रतिक्रिया आंखों में हंसी के रूप में होती है।

~~रत्नाकर जी ने अपने बिहारी रत्नाकर के छठें पृष्ट पर यह आनन्द~~

मानव का यह स्वभाव होता है कि वह प्रिय की खीझ में भी कभी-कभी आनन्द लेता है । यह बात पुरुष औरस्त्रियों में समान रूप से दिखाई पड़ती है । लेकिन यह खीझ जान-बूझ कर उत्पन्न कीगई होती है,वास्तविक नहीं । साथ हीयह प्रेम के अतिरेक के कारण उत्पन्न की जाती है । यह क्रिया हृदय स्थित भाव को भीव्यंजित करती है । अत: इसे अनुभाव रूप में देखना उचित है । बिहारी ने इस प्रकार की चेष्टाओं का वर्णन बहुत किया है --

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हंसै , दैन कहै नटि जाइ।।४७२।।

राधा कृष्ण को तंग करने और उनसे बात करने के आनन्द केलोभ से उनकी मुरली को चुरा लेती हैं । कृष्ण उनसे अपनी मुरली को मांगते हैं । इस पर वे कभी-कभी सौंह खाती हैं कि मैं क्या आपकी मुरली जानूं ? आपको विश्वास न हो तो मैं शपथ खा कर कहती हूं कि मुझे मुरली के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है । लेकिन

साथ ही भौंहों से हंसी द्वारा उसकी जानकारी को भी सूचित कर देती हैं । इसके बाद कभी वे देने के लिए कहती हैं और फिर उसे अस्वीकार कर देती हैं । इस प्रकार उनका लक्ष्य कृष्ण को अनेक तरह से तंग कर उनसे वार्तालाप का आनन्द उठाना है। ये विभिन्न चेष्टाएं उनके हृदय स्थित प्रेम-भाव को व्यंजित कर रही हैं। अत: अनुभाव ही कही जाएंगी ।

हंसना एक ऐसी मुख्य भावप्रेरित क्रिया है जो मन के सारे रहस्यों को खोल देती है । कवि ने इसका बड़ा सुन्दर चित्रण किया है । गांवों में प्राय: ऐसा अबभी होता है कि कुछ चरवाहे तो गायों को लेकर चराने के लिये ले जाते हैं और कुछ लोग अपनी-अपनी गायें उन्हीं के साथ हांक देते हैं जिनकी देख-रेख वे ही करते हैं ।इसी तरह राधा भी अपनी गायों को ले जाकर कृष्ण की गायों में हांक देती हैं; लेकिन कृष्ण हंसकर राधा की ओर हांक देते हैं कि ले जाओ मैं तुम्हारी गायें नहीं चराता । फिर वे (राधा) उन्हें स्मित के साथ उन्हें उसी तरफ हांक देती हैं और जब दोनों की हंसती हुई आंखें मिलती हैं तो दोनों का मन भी मिल जाता है। यहां 'हंसना' क्रिया हृदय के प्रेम का अनुभावन करा रही है जो लोक-जीवन से लिए गये प्रसंग के बीच प्रस्तुत होने से अत्यन्त मार्मिक हो गई है --

उन हरकी हंसि कै, इतै , इन सौं पी मुसकाइ ।
नैन मिलैं मन मिलि गए दोऊ, मिलवत गाइ।।१२८।।

इसी प्रकार अनुभावों केवर्णन सम्बन्धी एक बड़ी संख्या बिहारी सतसई में विद्यमान है ।

जिस प्रकार उन्होंने स्त्रियों के अनुभावों का वर्णन किया है उसी प्रकार पुरुष के अनुभावों का वर्णन भी किया है । हां, इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम अवश्य है । कवि ने शास्त्र में कथित अनुभावों का ही चित्रण नहीं किया है । उसने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि को लेकर शास्त्रीय सीमा के बाहर भी विचरा है । परिणामस्वरूप उसने बहुत सुन्दर-सुन्दर चित्र जो अत्यन्त स्वाभाविक हैं,प्रस्तुत किये हैं ।निम्नलिखित दोहे में व्याकुलता की व्यंजना के लिए अस्तव्यस्तता का कितना स्वाभाविक एवं रमणीय दृश्य प्रस्तुत है, देखा जा सकता है --

कहा लड़ैते दृग करे , परे लाल बेहाल ।
कहुं मुरली, कहुं पीत पटु, कहुं मुकुटु बनमाल।।१५४।।

नयनों की मार से व्याकुल पड़े हुए लाल की मुरली एक तरफ पड़ी हुई है तो पीताम्बर अलग । मुकुट छिटक कर दूर गिरा हुआ है तो बनमाला भी अलग जापड़ी है । कृष्ण को उन्हें सम्भालने की सुधि नहीं है । इसी प्रकार उन्होंने पुरुषों के सात्विक भाव का भी बड़ा सुन्दर चित्रण किया है । ब्रज पर प्रलय-कालीन घोर मेघमाला घिर आई है । मूसलाधार पानी बरस रहा है । ब्रजकी रक्षा में तत्पर कृष्ण ने अपने अतुल पराक्रम से गोवर्धन पर्वत को उठाकर उसी के नीचे सभी ब्रजवासियों को एकत्र है । कृष्ण दाएं हैं । इसी समय कृष्ण को राधिका दिखाई पड़ जाती हैं और उन्हें सात्विक कम्प हो जाता है । परिणामस्वरूप उनका हाथ कांप जाता है और हाथ पर उठाया हुआ पहाड़ भी डगमगाने लगता है तथा मालूम होता है कि ब्रजवासियों के ऊपर ही गिर पड़ेगा। इसको देख सभी ब्रजवासी व्याकुल हो जाते हैं । जब कृष्ण का ध्यान इधर जाता है तो अपने इस असामयिक कम्प पर उन्हें लज्जा आ जाती है । कवि ने इस स्थिति का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है--

डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।
कंपि किसोरी दरसि कै , खरे लजाने लाल।।६०१।।

इसी प्रकार के अनेक दोहों में कवि ने अनुभावों का सुन्दर एवं स्वाभाविक चित्रण किया है ।

---o---

तृतीय अध्याय

शी ल - सौ न्द र्य

शील - सौन्दर्य

बाह्य रूपसौन्दर्य तो हमें अपनी ओर बरबस आकर्षित करता ही है, एक और प्रकार का भी सौन्दर्य होता है जिसका सम्बन्ध मानव के अन्तर से होता है । इसी को अन्त:सौन्दर्य या शील सौन्दर्य कहते हैं , जो हृदय की आंखों से अनुभूत होता है। यह अत्यन्त प्रभावशाली होता है और इसका सबसे अधिक महत्वइस लिए होता है कि यह हमारी भावनाओं को उदात्त करता है । यह शील-सौन्दर्य मनुष्य में श्रद्धा-भाव को जागृत करता है तथा हमारी दुष्भावनाओं को चियंत्रित कर हमें कल्याण के मार्ग पर प्रेरित करता है । जिस प्रकार आन्तरिक भावों की प्रतिक्रिया अनुभावों के रूप में बाह्य रूप मे शारीरिक अवयवों और वचन आदि में दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार शील की प्रतिक्रिया मानवों के कर्तव्यों मे होती है। इसमे कर्म की ओरव्यावहारिक रूप में प्रेरित करने की शक्ति होती है। अत: इसको आधार मुख्य रूप में दया, करुणा, ममता, सेवा, सहानुभूति, समर्पण, त्याग और क्षमा आदि मानवीय उदात्त गुण होते हैं । इसीलिए हम किसी के शील का मूल्यांकन मुख्य रूप में उसके कार्यों को ध्यान में रखकर करते है । शील का सम्बन्ध कर्म से होता है अत: उसके लिए विस्तृत क्षेत्र की आवश्यकता होती है और परिणामत: इसका सम्यक् निरूपण कवि प्रबन्ध काव्यों में ही कर सकता है मुक्तक मे उसके लिए कम अवकाश होता है। बिहारी ने एक तो मुक्तक रूप मे अपनी रचना प्रस्तुत की है और दूसरे उन्होंने ऐसे छन्द को अपने भाव-विचार का वाहनबनाया है जो सम्भवत: आकार मे सबसे छोटा है । फलत: उनके लिए शील-निरूपण एक बहुत बड़ी समस्या थी। हा यदि वे प्रबन्ध के क्षेत्र मे अग्रसर हुए होते तो दोहो मे भी शील को सफलता के साथ प्रस्तुत कर सके होते ।

शील-निरूपण मे युग की प्रवृत्तिका भी बहुत कुछ हाथ होता है । युग-भावना ही तो कवि की भावनाओ के साचे में ढलकर काव्य का स्वरूप धारण करती है। बिहारी का जिस युग में आविभाव हुआ था, वह युग नायिका के कुच-कुच की उलझन मे ही उलझा हुआ था । इस युग-भावना के निर्माण मे राजनैतिक परि-स्थितियो का योग भी महत्वपूर्ण होता है । यदि उस युग की राजनैतिक परिस्थिति पर हम दृष्टिपात करते है तो यह दृष्टिगोचर होता है कि उस समय भारतीय

स्वदेशी एकतन्त्र राज्यों की सत्ता का विनाश हो चुका था और देश विदेशियों के विनाशकारी शासन के नीचे अर्द्धमूर्च्छितावस्था मे सांस ले रहा था । जब बिखरे हुए शक्ति पुंजों को अपने में समाहित कर लेने वाली कोई एक केन्द्रिय शक्ति ही नहीं थी तो शेष छोटे-छोटे शक्ति-केन्द्र या राज्य क्या कर पाते। अत: वाध्य हो कर उन्हे विदेशी शासकों की शरण लेनी पड़ी । ये विदेशी भी ऐसे थे जिनके रक्त मे ही विलासिता का बीज निहित था । दुनियां में शायद सबसे अधिक विलासी जाति मुसलमानों की ही है । उनकी इसविलासिता का प्रभाव उनके अधिनस्थ राजा औरसामन्तों पर पड़ा और फिर वह क्रमश: नीचे के वर्गो मे संक्रमित होता गया। अपने से बड़ों की नकल मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है --चाहे कृत्रिमता के कारण हो या उदात्तीकरण की भावना से । फलत: हमारे कवि भी इस प्रवाहसे अपने को बचा न पाए । हां, कुछ लोग इसके अपवादस्वरूप अवश्य दिखाई पड़ते हैं। कुछ लोग तो युग की सीमा-परिधि को लांघने की सामर्थ्य रखते ही हैं ।

इस युग की प्रवृत्ति के कारण नारी के रूप-सौन्दर्य के चित्रण में ही हमारी दो सौ वर्षों की प्रतिभा खप गई । यह दूसरी बात है कि इस क्षेत्र में चरम विकास की सीमा तक हम पहुंच गये। इस दलदल में फंसने के कारण हम मानव के और रूपों को भूल गए और परिस्थिति के अनुकूल इस युग के साहित्य में शील का वह सौन्दर्य नहीं दिखाई देता जो भक्ति कालीन-मुख्यत: सगुण रामभक्ति शाखा के साहित्य में ~~परिलक्षित~~ परिलक्षित होता है ।

प्रस्तुत विषय से सम्बद्ध कवि अर्थात् बिहारी पर भी यह युग प्रभावपूर्णरूप से पड़ा है और उनकी रचना में शील का वह मनोहारी स्वरूप नहीं मिलता है । फिर भी यत्र-तत्र जो शील निरूपण उनमें विखरा हुआ है, वह बहुत आकर्षक है जो आगे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

हम सर्वप्रथम शील के उस स्वरूप को लेते हैं जो अपने शरण्यों के प्रति होता है। चाहे बिहारी ने इसे ईश्वरीय माध्यम से ही क्यों न प्रस्तुत किया हो लेकिन है यह मानव हृदय से सम्बद्ध वस्तु ही। और जिसके लिए भारतीय जीवन का अतीत विख्यात रहा है। करुणार्द्र हृदय की यह प्रवृत्ति होती है कि वह थोड़ी सी भी करुण दशा देखकर द्रवित हो जाता है। हमारे मनीषियों ने अपने

भगवान् में इसकी स्थापना सर्वाधिक रूप में की है । अत: युगों से उसका भक्तवत्सल भी शरण्य रूप हमारे सामने विद्यमान है। जैसाकि हम ऊपर कह आए हैं कि इसका सम्बन्ध मानव-हृदय से होता है, भले ही वह अलौकिक भूमिका में अवतारित किया गया हो। कवि अपने युग की न पसीजने वाली प्रवृत्ति को देखकर खीझ उठता है और भगवान् को माध्यम बनाकर अपनी इस खीझ की अभिव्यक्ति करता है ।वह कहता है कि हे भगवान् थोड़े ही 'गुन' से जो रीझ जाने की आपकी प्रवृत्ति रही उसको,ऐसा मालूम होता है कि आपने त्याग दिया है।सम्भवत: आपने भी आजकल केदानियों का स्वभाव ग्रहण कर लिया है यहां 'गुन' से याचक या भक्त की करुण-दशा का अर्थ स्पष्ट है --

थोरैं ही गुन रीझते , बिसराई वह बानि ।
तुमहूं, कान्ह, मनौ भए आजकाल्हि के दानि।।६८।।

\+ \+

तुमहूं लागी जगत् गुरु जगनाइक जगबाइ ।

इसी प्रसंग में उन्होंने जयसिंह की दानवीरता का भी बड़ासुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन किया है । वह कहता है कि जयसिंह ऐसे दानी हैं कि उनसे रास्ते चलते भी लोग धन, मणि और मोतियों की बहुमूल्य माला अनायास पा जाते हैं । विशेषता यह है कि गुणी लोगों का पाना तो स्वाभाविक ही है, निर्गुणी भी उनकी दानशीलता से वंचित नहीं रहते । हां, जयसिंह से भेंट होने का सौभाग्य अवश्य मिलना चाहिए । उनसे दान पाना बहुत आसान है लेकिन भेंट होना कठिन है --

चलत पाईं निगुनी गुनी धनु मनि-मुक्तिय-माल।
भेंट होत जयसाहि सौं भागु चाहियतु माल ।।१५६।।

करुणा और दानशीलता तो मानवीय शील हैं ही, उसकी वीरता भी उसके शील का द्योतक है । यहां ध्यान रखना चाहिए कि वीरता जब कल्याण के पथ पर होती है तभी उसको शील की महत्वपूर्ण संज्ञा प्राप्त होतीहै ।बिहारी ने जयसिंह की जो उनके आश्रयदाता थे, क वीरता का बड़ा यथातथ्य चित्रण किया है । उनका यह गुणगान अपने आश्रयदाता की झूठी प्रशंसा वाली रीतिकालीन

प्रकृत्ति नहीं है बल्कि जयसिंह उसके योग्यपात्र थे । रीतिकाल की जो भी दुष्प्रवृत्ति बिहारी में हो लेकिन चापलूसी की प्रवृत्ति उनमें एकदम नहीं पाई जाती --

सामा सेन , सयान की सबै साहि कै साथ ।
बाहुबली जयसाहिजू , फते तिहारैं हाथ ।।७१०।।
यौं दल काढ़े बलक तैं तैं , जयसिंह भुवाल ।
उदर अघासुर कैं परें ज्यौं हरि गाइ ,गुवाल।।७११।।
घर घर तुरकिनि, हिंदुनी देति असीस सराहि ।
पतिनु राखि चादर , चुरी तैं राखी, जयसाहि।।७१२।।

पुरुषों का शील तो दया, करुणा, वीरता मे दिखाई पड़ता ही है और ऐसी बात नहीं है कि वह स्त्रियों के हिस्से मे न पड़ता हो । स्त्रियों का परिवार के साथ बहुत महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है, उसका सारा भारवहन एक तरह से उन्हीं को करना पड़ता है। अत: उनका यह कर्तव्य होता है कि वे उसको कलह आदि दुष्प्रवृत्तियों से बचावें । बिहारी ने एक ऐसी ही स्त्री का वर्णन किया है जिसके देवर की नियत उसके प्रति ठीक नहीं है और वह इसको प्रकाश मेंलाने पर भावी गृहकलह की चिन्ता से उसी प्रकार सुखती जा रही है जिस प्रकार पिंजड़े में घुसी हुई बिल्ली के भय से ~~शुक~~ उसमें का निवासी शुक सूखता जाता है। कवि ने इसका कितना स्वाभाविक वर्णन निम्नलिखित दोहे में किया है --

कहति न देवर की कुबल कुल-तिय कलह डराति।
पंजर-गत मजार-ढिग सुक ज्यों सूकति जाति।।८५।।

उपर्युक्त शील सम्बन्धी दोहों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि बिहारी ने यद्यपि शील चित्रण बहुत कम किया है चाहे वह जिस कारण से हो फिर भी जो किया है वह बहुत महत्व का एवं सफल है ।

चतुर्थ अध्याय

प्रकृति - सौन्दर्य

प्रकृति - सौन्दर्य

मानव और प्रकृति का सम्बन्ध अनादि काल से है और वह उसकी स्नेहमयी गोद में चिरकाल से पलता आया है । प्रकृति-प्रदत्त कन्द-मूल-फल एवं शरिताओं तथा झरनों के अमल-धवल शीतल जल से वह अपना भरण-पोषण करता रहा और घाम-शीत तथा वर्षा से वृक्षों की घनी छायाओं और कन्दराओं ने उसकी रक्षा की । इसी प्रकार हिम-मण्डित गगन चुम्बी शैल-मालाओं पर ऊषा के ताज़े और अरुण आलोक के पड़ने से जो एक रमणीय और आश्चर्यजनक स्वर्णिम सौन्दर्य की उत्पत्ति हुई उसने आदिम मानव की दृष्टि को अपनी ओर बरबस ही खींच लिया और वह इस अलौकिक सौन्दर्य का पान कर आनन्दविभोर हो उठा । उसे सरिताओं की मन्द-गम्भीर गति तथा झरनों के कल-कल ,कल-कल में संगीत का स्वर सुनाई पड़ा । मंजरियों से लदी हुई आम की डालियों में बैठी वसन्त की कोकिल की मीठी तान, रंग विरंगे फूलों से लदी हुई अरुण-कोमल-चंचल-किशलय-दल शोभित विटपों तथा तरु कोटरों और घोंसलों में बैठे पक्षियों का कल-कूंजन उसे मुग्ध बना दिया । कहने कातात्पर्य यह है कि अनादि काल से ही मानव प्रकृति के साथ रहता आया है और उसके नैसर्गिक सौन्दर्य पर मुग्ध होता आया है ।

मानव प्रकृति के रमणीय कोमल रूप के संसर्ग में तो रहा ही है उसके भयंकर एवं कठोर रूप से भी इसका परिचय कम नहीं रहा है । इन्द्रियों को कंपा देने वाली शरद की हिमवर्षा, सावन-भादों में मेघमाला की उमड़-घुमड़ , कादंबिनी की उसमें कौंधने वाली चपला और विक्षुब्ध सागर तथा नदियों की उत्ताल तरंगों के थपेड़ों का भी सामना उसे करना पड़ा है। इसके साथ ही ऊसर ठूहों , वीरान जंगलों और रेगिस्तान की बालुकाराशि से भी उसे मोह रहा है । गांवों में बसने वाली जनता पुरवैया में झूमते हुए नीम के पेड़ , छप्परों पर फैली हुई कुम्हड़े तथा सेम और कद्दू की बेलों मदिर भीनी गंध उत्पन्न करने वाले महुओं आंगन में घूमने वाली गौरैया तथा हरे-पीले शुकों का लाल-लाल चोंचों में धान

की पीली बालियों को लेकर उड़ने तथा खेतों में फैली धानी एवं पीली सौन्दर्य राशि के लिये भी व्याकुल रहता है । कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति के सभी रूपों के प्रति मानव आकर्षित होता रहा है ।

इस आकर्षण में एक तो उनमें वर्तमान नैसर्गिक सुषमा है और दूसरे साहचर्यजनित मोह । जब उसका हृदय निरपेक्ष रहता है तो प्रकृति का कोमल और सुन्दर रूप उसे आकर्षित करता है और सापेक्ष होने पर उसका अन्य रूप उसे आकर्षित करता है। जनजीवन की इस भावना का सभी कवियों ने कुछ न कुछ चित्रण अवश्य किया है और सहृदय कवियों ने तो उसका भव्य चित्र उपस्थित किया है।

प्रकृति के चित्रण में परिस्थिति एवं प्रसंग के अनुसार विभिन्न अभिव्यक्ति-रूपों का दर्शन होता है और उन लोगों ने प्रकृति के समस्त गोचर अवयवों का चित्रण किया है कुछ जिसमें पर्वत, मैदान, मरूभूमि , कुंज , पेड़ , पौधे, लता-दल, छाया, घास, पात फल-फूल , पशु-पक्षी , समुद्र , झील , नदियां , आकाश , मेघ , बिजली नक्षत्र, सूर्य चन्द्रमा, पाला, धुंआं, कोहरा, वर्षा , पवन, चन्द्रमण्डल आकाशगंगा , नीहारिका, उषा-सन्ध्या , इन्द्रधनुष , आंधियां, धूप, चांदनी, किरण आदि सभी इनकी तूलिका के विषय बने हैं। उसने इस स्थूल छटा का ही चित्रण केवल नहीं किया है उसमें उत्पन्न सूक्ष्मगति,का भी कवियों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों एवं स्थितियों का चित्रण किया है जिसका विस्तृत स्वरूप आगे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

वर्ण-सौन्दर्य

मंमिमागत सौन्दर्य -- कवियों ने प्रकृति के स्थूल रूपों और उनकी गतिविधि का तो चित्रण किया ही है काव्य में सजीवता लाने के लिए और विम्ब ग्रहण के लिए शब्दों के द्वारा रंगों की संवेदना कराने का भी प्रयत्न किया है । इन वर्णनों से उनका सूक्ष्म निरीक्षण तथा प्रकृति प्रेम का ज्ञान होता है । रंगों के सम्बन्ध में रुचिभिन्नता भी होती है । पुरुषों को पीला तथा स्त्रियों को लाल रंग सबसे अधिक प्रिय होते हैं। अत: उन लोगों ने रुचि के अनुकूल रंगों के विभिन्न भेद-प्रभेदों, छायाओं व मिश्रणों का सूक्ष्म वर्णन किया है --

गेहूं के गारे गालों पर स्वदेसी तितलियां बलखाती ;
अलसी विलसी पांती पांती / --कलक्टर सिंह केशरी ।

नादपरक सौन्दर्य -- बाह्य जगत में हम नाना प्रकार की मधुर तथा भयंकर ध्वनियों को सुनते हैं -- वृक्षों पर तथा घोसलों में बैठे पक्षि-वृन्द का कलकूजन-फूलों तथा अधखिली कलियों पर मंडराते हुए भौरों की गुंजार, लहरों की कोमल मधुर कल-कल ध्वनि, वायु-विकम्पित वृक्षों का मंजुल तथा शुष्क पत्रों का ममर रव, झीली की झनकार तथा मेघों की गर्जन आदि निपुण कवि नादानुयायी शब्दों के प्रयोग द्वारा दृश्यान्तर्गत अनुभूति विविध ध्वनियों का चित्रण करते हैं --

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
बांसों का झुरमुट सन्ध्या का झुटपुट -- (मानस)
हैं चहक रही चिड़ियां -- टी-टी-टी टुट टुट - पते सुगान्त

गन्धपरक सौन्दर्य -- जिस प्रकार वर्ण एवं नाद की व्यंजना कवि करता है उसी प्रकार गंध संवेदना भी शब्दों के द्वारा कराता है । जिन कवियों की दृष्टि सूक्ष्म नहीं होती है वे गन्धों का स्थूल रूप से वर्णन करते हैं औरउनकी गति तीव्र या मीठी गन्ध तक ही सीमित रह जाती है लेकिन जिनकी दृष्टि सूक्ष्म होतीहैऔर नासिका विभिन्न प्रकार के गन्धों को ग्रहण करने में जागरूक रहती है वे विभिन्न वस्तुओं की स्थानों में उत्पन्न अनेक प्रकार के गंधों को सम्बेदित कराते हैं ।

महाकवि कालिदास ने अषाढ़ की प्रथम झड़ी के पड़ने पर पृथिवी से जो सोंधी सुगन्ध निकलती है उसका वर्णन किया है ।

स्पर्श की संवेदना -- स्पर्श का एकमात्र आधार त्वचा है और इसके द्वारा प्राप्त नाना प्रकार की मृदुल-तरल स्पर्श-अनुभूतियों को कवि की वाणी द्वारा रूप ग्रहण कर पाठक के हृदय को स्पर्श-संवेदना से गद्‌गद् कर देती है । शारदीय-राकाशशि की स्वर्णिम रेशमी रश्मियों शीतकालीन की सुखद धूप, प्रात:कालीन धीर समीर का स्फूर्तिदायक स्पर्श तथा श्याम सलोनी छाया व किरणों आदि का पुलक उत्पन्न करने वाली स्पर्शानुभूतियों का वर्णन कवियों ने किया है। और पाठक भी इस विशेष अनुभूति से पुलकित होता है ।

भावाक्षिप्त सौन्दर्य -- जब तक कवि का पात्र निरपेक्षरूप से प्रकृति चित्रण या दर्शन करता है तब तो उसका आलम्बन रूप में चित्रण करता है लेकिन जब वह भावाविष्ट या सापेक्ष रूप से इस व्यापार में प्रवृत्त होता है तो उसका उद्दीपन रूप हमारे सामने आता है । यहां ध्यान देने की बात यह है कि इस अवस्था में प्रकृति के वास्तविक सौन्दर्य का साक्षात्कार नहीं हो पाता बल्कि भावाविष्ट हृदय भावों के परिवेश में उसके आच्छादित रूप का दर्शन करता है । इसीलिए संयोगावस्था में सुखद वस्तुएं वियोगावस्था की निराशा के कारण दु:खद मालूम होती हैं । हिन्दी में प्रकृति के आलम्बन रूप के चित्रण में कवि उतने प्रवृत्त नहीं हुए हैं जितना उसके उद्दीपन रूप के चित्रण में ।

मानवीय सौन्दर्य -- आजकल इसे पश्चिम की देन समझा जाता है लेकिन विचार करने पर इसका श्रोत बहुत प्राचीन काल से बहता हुआ दिखाई पड़ता है । कालिदास ने बादल को सन्देशवाहक के रूप में चित्रित किया है , बिहारी में भी उसे मानवीकरण के रूप मे चित्रित किया गया है। इस रूप में प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में चित्रित किया जाता है और उसे हंसते , बोलते , गाते और रोते हुए दिखाया जाता है । इसमें कवि मानसिक तादात्म्य या साहचर्य के कारण निकटतम सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और मां, सखी या प्रिया के रूप में उसकी भावना करता है। वह कभी-कभी मात्र उसकी चेष्टाओं का ही वर्णन करता है और कभी संभाषण आदि अन्य व्यवहारों का भी वर्णन करता है ।

अलंकारपरक सौन्दर्य -- मानव सौन्दर्य के वर्णन में उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा आदि में प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग भी कवि करता है और उसके द्वारा उस सौन्दर्य को अलंकृत करता है । इसके लिए उपयुक्त उपादान प्रकृति के ही क्षेत्र से वह प्राप्त करता है ।

प्रतीकात्मक सौन्दर्य -- प्रकृति के कुछ तत्व मानवीय उदात्त भावनाओं की व्यंजना करते हैं ये केवल उपमानों के रूप में ही नही प्रयुक्त होते बल्कि हमारे अन्त:करण में सुप्त भावनाओं को भी जगाते हैं और उनके प्रतीक होते हैं । उदाहरणस्वरूप -- दीप की लौ , चातक , किरण , कमल , चन्द्रमा, मीन आदि क्रमश: मूकव्यथा, अतृप्ति तृप्ति , आनन्द का प्रकाश पवित्रता, शीतलता, तड़प आदि मानसिक स्थितियों के प्रतीक हैं । इन प्रतीकों में हृदय को आलोड़ित करने की महत्वपूर्ण क्षमता होती है ।

अतीन्द्रिय सौन्दर्य -- कुछ कवि समस्त गोचर जगत के मूल में किसी अज्ञात शक्ति की भावना करते हैं और सभी प्राकृतिक वस्तुओं के सौन्दर्य में उसी शक्ति का आभास पाते हैं और इस तरह रहस्य भावना की अभिव्यक्ति में प्रकृति को भी साधन बनाते हैं ।

उद्देशात्मकता -- कोरे नैतिक उद्देशों का तो साहित्य में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं होता है लेकिन यदि उसे साहित्यिक मधु में लपेट कर प्रस्तुत किया जाय तो दृश्य वे ग्राह्य हो सकते हैं और कवियों ने इसे इस रूप में प्रस्तुत किया भी है--

"उदित अगस्त पंथ जल सोषा -
जिमि लोभहिं सोषइ सन्तोषा ।"

वातावरणगत सौन्दर्य -- प्रबन्ध काव्यों में किसी गम्भीर स्थिति या भाव विशेष के उत्कर्ष के चित्रण में प्रकृति को कवि त्याग पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित करते हैं । आजकल तो केवल वातावरण प्रधान कविताएं भी दिखाई पड़ती हैं जिनमे वर्ण्य तो नाम मात्र का ही रहता है और वातावरण के चित्रण पर ही कवि की दृष्टि मुख्य रूप से जमी रहती है । पृष्ठभूमि तथा वातावरण चित्रण में

कुछ मौलिक भेद भी होता है ।पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित प्रकृति का मुख्य विषय से परोक्ष या निष्क्रिय सम्बन्ध होता है जबकि वातावरण का निकटतम, मुख्य तथा प्रत्यक्ष होता है । पृष्ठभूमि का संकेत मात्र कर देना ही पर्याप्त होता है जबकि वातावरण का कुछ विस्तृत वर्णन आवश्यक होता है । पृष्ठभूमि-चित्रण में कवि मानव-जीवन और प्रकृति के वैषम्य अथवा विरोध या साम्य की एक झलक देकर मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करता है । जब उसे पृष्ठभूमि रूप में प्रकृति चित्रण करना होगा तो वह इतना ही कहेगा कि प्रकृति में कितनी शांति और व्यवस्था है और मानव जीवन में कितनी हलचल है। तात्पर्य यह है कि पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित प्रकृति दृश्य या चित्र के अलंकरण अथवा किसी गहरे संकेत के लिए प्रयुक्त होती है जबकि वातावरण रूप में चित्रित प्रकृति का गहरा प्रभाव पात्रों के चरित्र पर घटित करके दिखाया जाता है ।

प्रकृति के उपर्युक्त विविध रूपों का चित्रण कवियों ने किया है । अब बिहारी का प्रकृति चित्रण देखने के पहले हमें उनकी परिस्थितियों का अवलोकन नितान्त आवश्यक है क्योंकि परिस्थितियों से कवि का मानस तथा लेखनी बहुत कुछ प्रभावित होती है । बिहारी उस काल में उलझे हुए थे जिसमें कवियों की दृष्टि नायिका के सौन्दर्य की कुच-कुच वर्णन में ही उलझी हुई रह थी । परिणामत: उनकी दृष्टि सीमित हो गई थी उनकी प्रतिभा को प्रकृति के मुक्त व्यापक प्रांगण विहार के लिए अवकाश न मिल सका। साथ ही वे बिहारी मुक्तककार के रूप में हमारे सामने आते हैं जिसमें प्रकृति के शोभा उनके लिए उतनी गुंजाइश नहीं होती जितनी प्रबन्ध काव्य में होती है । कवि को ४८ मात्राओं में ही सब कुछ कह देना है । स्पष्ट है कि निपुण से निपुण कवि भी इतनी छोटी सीमा में सब कुछ नहीं प्रस्तुत कर सकता । इसके साथही उनपर युग काप्रभाव भी बहुत कुछ था/अत: उन्होंने अधिकतर प्रकृति का भावाक्षिप्त रूप ही सामने रखा । उसके कुछ अन्य रूप भी उनकी कविता में हमें दिखाई पड़ते हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक सौन्दर्य सम्बन्धी चित्र हैं।

मादक माधुर्य -- कूकि रसाल सौरभ सने मधुर माधवी गंध ।
ठौर ठौर झूमत झपत भौंर भौंर मधु अंध।।

पुष्पों के मादक मकरंद का पान करके भौंरों के झुंड के झुंड उन्मत्त हो गये हैं और

मद केप्रभाव के कारण वे झूमते ही झूमते हुए ठौर-ठौर घूम रहे हैं । मदपान में झूमने और झंपने की स्थिति पाई ही जाती है । इन दोहों से उपरोक्त स्थिति प्रत्यक्षत: आंखों के सामने उपस्थित हो जाती है । इसको किसी भाव आदि के परिवेश में नही चित्रित किया गया है बल्कि स्वतन्त्र रूप से उसका चित्रण हुआ है। अत:

प्रभावपरक-सौन्दर्य

दिसि दिसि कुसुमित देखियत उपवन-बिपिन-समाज ।
मनहुं बियोगिनु कौं कियौ सर-पंजर रितुराज ।।४७६।।

संयोग की अवस्था में फूलों से लदी प्रकृति नायक नायिका को अत्यन्त रमणीय दिखाई देती है । लेकिन प्रिय के अभाव में वही उस मिलन की स्थिति का स्मरण करा देती है और अभाव जनित दु:ख के कारण से वही प्रकृति उन्हें दु:खदायिनी प्रतीत होती है । कुसुमित उपवन बाणों के पिंजड़े के समान प्रतीत होता है । यहां प्रकृति वियोग-जनित व्यथा को और भी उद्दीप्त करने वाली चित्रित की गई है । अत: यहां उसका प्रभावपरक सौन्दर्य है ।

निम्नलिखित दोहे भी उपर्युक्त रूप को ही व्यक्त करते हैं --

नाहिं न ए पावक - प्रबल लुवैं चलैं चहुं पास ।
मानहु बिरह बसंत कैं ग्रीष्म - लेत उसास ।।४८८।।

कियौ सबै जगु काम-बस, जीते जिते अजेइ ।
कुसुमसरहिं सर धनुष कर अगहनु गहन न देइ।।४९५।।

हौं ही बौरी बिरह-बस , कै बौरो सबु गाउं ।
कहा जानि ए कहत हैं ससिहिं सीतकर-नाउं।।२२५।।

भौ यह ऐसोई समौ , जहां सुखद दुखु देत ।
चैत-चांद की चांदनी डारति किए अचेत।।५१६।।

घुरवा होहिं न , अलि , उठै घुवां घरनि-चहुंकोद ।
जारत आवत जगत कौं पावस-प्रथमपयोद।।५४६।।

हठु न हठीली करि सकैं , यह पावस-ऋतु पाइ ।
आन गांठि घुटि जाइ , त्यौं मान-गांठि छुटि जाइ।।५६२।।

वेऊ चिरजीवी , अमर निघरक फिरौ कहाइ ।
छिनु बिछुरैं जिनकी नहीं पावस आइ सिराइ।।५६३।।

मानवीय सौन्दर्य --

अरुनसरोरुह-कर-चरन, दृग - खंजन,मुख - चंद ।
सरद आइ सुंदरि सरद काहि न करति अनंद ।।४८७।।

लाल-लाल कमल ही जिसके हाथ-पांव हैं, खंजन ही जिसके नयन हैं , चन्द्रमा ही जिसका मुख है, ऐसी शरद-सुन्दरी समय पर आकर किसे न आनन्दित करती है? यहां स्पष्ट हैकि शरद ऋतु को किसी सुन्दरी नायिका के रूप में चित्रित किया गया है । अत: इसका (प्रकृति का) मानवीकरण के रूप मे चित्रित किया गया है। जड़-प्रकृति को चेतन रूप देने से एक विचित्र सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है जिसका चित्रण कवि ने उपर्युक्त दोहे मे किया है ।

निम्नलिखित दोहों में भी प्रकृति को क चेतन रूप दिया गया है --

घन-घेरा छुटि गौ, हरषि चली चहूं दिसि राह ।
कियौ सुचैनौ आइ जगु सरद-सूरनरनाह।।४८५।।
कियौ सबै जगु काम-बस, जीते जिते अजेइ ।
कुसुमसरहिं सर धनुष कर अगहनु गहन न देइ।।४९५।।
मिलि बिहरत, बिछुरत मरत, दंपति अति रति-लीन।
नूतन विधि हेमंत सबु जगतु जुराफा कीन।।४९७।।

चुवतु स्वेद मकरंद-कन, तरु-तरु-तर बिरमाइ ।
आवतु दच्छिन देस तैं थक्यौ बटोही बाइ ।।३९०।।

लपटी पुहुप-पराग - पट , सनी स्वेद मकरंद ।
आवति, नारि नवोढ़ लौं , सुखद बायु गति मंद।।३९२।।

गति-सौन्दर्य --

चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट - पट झीन।
मानहु सुरसरिता-विमलजल उछरत जुग मीन।।५७६।।

उपर्युक्त दोहे में प्रकृति के गतिशील सौन्दर्य का चित्रण कवि ने किया है। नदी के स्वच्छ जल में चमचमाती हुई सुन्दर मछलियों का उछलना कितना सुन्दर होता है । जिसने देखा होगा वही उस सौन्दर्य का महत्व जानेगा ।

कवि अपने वर्ण्य , विशेषकर रूप-सौन्दर्य को आकर्षक बनाने के लिए उत्प्रेक्षा और उपमा आदि अलंकारों के रूप में सुन्दर प्राकृतिक उपमानों का उपयोग करते हैं । इस प्रसंग में भी प्रकृति के सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है । बिहारी ने इस रूप में प्राकृतिक वस्तुओं का बहुत उपयोग किया है --

कर के मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाइ ।
सदा - समीपिनि सखिनु हूं नीठि पिछानी जाइ।।५१६।।

छिप्यौ छबीलौ मुंहु लसै नीले अंचर - चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै कालिंदी कैं नीर।।५३८।।

---o---

पंचम अध्याय

क ला - सौ न्द र्य

कला-सौन्दर्य

इस अन्तर्बाह्य गोचर-अगोचर नाना रूपात्मक जगत से कवि अपनी सूक्ष्म अन्वेषिणी प्रतिभा के द्वारा सौन्दर्यशील विभूतियों का चयन करता है । उसकी प्रकृति के विशाल दृश्य-संभार में भी विचरण करती है और वह जब किशलय-दल-शोभित दुष्प्राप्य वनराजि, उस पर मड़राते हुए मधुगंध लोभी चटुल भ्रमर-समूह , सूर्य एवं चन्द्र की सीत-पीत रश्मियों में कल-कल निनादिनी वन्या, मानवबुद्धि को विस्मय-विमुग्ध करने वाली हिमधवल विशाल शैलमालाओं, स्फूर्ति-दायिनी ऊषा की लाली एवं अलस संध्या की वेला में अपने घोंसलों में कल-कूजन् पक्षिवृन्द तथा मधुर-मादक मकरन्द-सुवासित शीतल-मन्द समीर के सौन्दर्य पर तो रीझता ही है, साथ ही रमणी के पावन एवं मादक रूप माधुर्य और मानव की वृत्तियों को रसाने की अपूर्व क्षमता वाली माया, ममता, करुणा, हर्ष-विषाद आदि मानवीय भावनाओं से भी तादात्म्य स्थापित करता है । ये विभूतियां प्रत्यक्ष रूप में तो आकर्षण और रमणीयता की कल्पनातीत क्षमता रखती ही हैं, लेकिन कवि जब इन्हें अपनी प्रतिभा के स्वर्ण-स्पर्श से जब छू देता है तो इनका कायाकल्प हो जाता है और ये और भी प्रभावशालिनी हो जाती हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि इन चयन की हुई वस्तुओं को कवि अपनी कल्पना के द्वारा उदात्त करके विशेष भूमिका में काव्य में प्रस्तुत करता है और ये उस समय अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक हो जाती हैं । इसका प्रमाण यह है कि प्रत्यक्ष रूप में इनका आस्वाद सभी नहीं कर पाते हैं और जब उन्हें काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो प्राय: सभी कुछ-न-कुछ अवश्य प्रभावित होते हैं। प्रत्यक्ष में शोक-विह्वल मुखाकृति को देखकर गदगद् कंठ और आंसूपूर्ण नयन होने वाले कम मिलेंगे लेकिन काव्य को पढ़ते या देखते समय अधिकांश की यह स्थिति अवश्य हो जाती है। एकत्र की हुई सामग्री को उदात्त रूप देने, उसको प्रस्तुत करने के लिए विशेष भूमिका तैयार करने तथा उन्हें प्रभावपूर्ण ढंग से उपस्थित करने के उपयुक्त माध्यम के निर्धारण में ही कवि-कल्पना का महत्व दिखाई पड़ता है। इस स्थिति में उसे अनावश्यक तत्वों को छांटना तथा आवश्यक को एकत्र करना पड़ता है । अत: बाह्य

जगत् का सौन्दर्य जिस पद्धति विशेष से काव्य में उदात्त एवं प्रभावकारी रूप धारण करता है, उसे कला-सौन्दर्य या काव्य-शैली का सौन्दर्य कहते हैं । इस पद्धति विशेष के निर्धारण में कवि काव्यक्तित्व भी प्रच्छन्न रूप में निहित रहता है। इसीलिए कहा गया है कि शैली ही कवि का व्यक्तित्व होता है । जिस प्रकार प्रकृति में आनन्द-सौन्दर्य सुन्दर होते हैं उसी प्रकार शैलीगत-सौन्दर्य भी प्रभावकारी होता है । लेकिन एक बात ध्यान देने की है और वह यह है कि भावसम्पृक्त अवस्था में ही यह विशेष सुन्दर होती है और जब इसका लक्ष्य मात्र कलाप्रदर्शन हो जाता है तो उस समय इसका पलड़ा हल्का हो जाता है --कम से कम सूक्ष्म दृष्टि वाले रसिकों के लिए अवश्य । व्यक्तित्व की विभिन्नता के कारण शैलीगत-भिन्नता भी विभिन्न लेखकों में दिखाई पड़ती है । यहां यह भी कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यह सौन्दर्य गम्भीर मानसिक होता है ।

इसका विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि इसका सम्बन्ध भाषा, वर्णन-पद्धति तथा अलंकारों आदि अनेक तत्वों से है । अत: इस प्रसंग में उनपर विचार करना भी आवश्यक हो जाता है ।

हम सबसे पहले भाषा को लेते हैं । भाषा सीधी-सादी और भंगी लिए हुए हो सकती है । सीधी-सादी भाषा का प्रयोग हम व्यवहार में करते हैं। इसका प्रयोग काव्य में भी होता है और यह कहें कि अधिकतर इसी का प्रयोग होता है तो अत्युक्ति न होगी। भाषा के इस सरल रूप को अभिधात्मक कहते हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त उसका एक और रूप होता है जिसे हम लाक्षणिक रूप कहते हैं । इसमें भाषा भंगी लिए होती है और उसमें उसके वाच्यार्थ का विरोध होता है। काव्य-कला में पटु लोगों को यह अपेक्षाकृत अधिक पसन्द होती है जहां इन दोनों का बोध होता है वहां विद्वानों ने भाषा की व्यंजना-शक्ति मानी है ।

बिहारी की भाषा अधिकांशत: अभिधात्मक ही है । इस भाषा का सौन्दर्य भी महत्व इसमें है कि वह भावों के अनुरूप हो तथा उसमें भाव-वहन की पूरी क्षमता हो। इस दिशा में हम बिहारी की भाषा को पूर्ण समर्थ पाते हैं और बिहारी हमें एक पटु-शब्दशिल्पी के रूप में दिखाई पड़ते हैं। उनकी भाषा रीति-कालीन महान कवियों की भाषा के समकक्ष कही जा सकती है ।

जहां कोमल भावों की व्यंजना करनी होती हैवहां इनकी भाषा कोमल होती है और उससे माधुर्य टपकता रहता है । निम्नलिखित दोहों को देखा जा सकता है --

ललित स्याम लीला, ललन, बढ़ी चिबुक छबि दून।
मधु-छाक्यौ मधुकरु पर्‌यौ मनौ गुलाब- प्रसून ।।२७०।।

तरिवन-कनकु कपोल-दुति बिच बीच हीं बिकान ।
लाल लाल चमकतिं चुनीं चौका - चीन्ह-समान।।८२।।

और जहां परुष भावों की व्यंजना करनी होती है वहां उनकी भाषा भी उसके वहन में समर्थ दिखाई पड़ती है --

यौं दल काढ़े बलक तैं तैं , जसिंह भुवाल ।
उदर अघासुर कैं परैं ज्यौं हरि गाइं, गुवाल।।७११।।

गठन सौन्दर्य -- काव्य में व्यर्थ के शव्दों का प्रयोग ठीक नहीं होता। जितने भी शव्द हों वे भाव या वस्तु की अभिव्यक्ति करने वाले होने चाहिए । भाषा का सौन्दर्य इस बात में है कि वह कम से कम शव्दों के द्वारा अधिक से अधिक व्यंजना करने में समर्थ हो । बिहारी इस कला में उस्ताद हैं और इसी गुण के कारण वो गागर में सागर भरने वाले कहे गये हैं । यह गुण सामासिक पद्धति के प्रयोग से अधिक उत्पन्न होता है । व्रजभाषा की प्रवृत्ति सामासिक नहीं है लेकिन बिहारी ने छोटी-छोटी सामासिक पदावलियों के द्वारा व्रज भाषा की इस प्रवृत्ति की भी रक्षा की है और साथ ही अपनी भाषा में गठन भी लाए हैं --

विकसित-नवमल्ली-कुसुम-निकसित परिमल पाइ।
परसि पजारति बिरहि-हिय बरसि रहे की बाइ।।१७५।।

कहीं-कहीं लम्बे समासों का भी प्रयोग किया है लेकिन फिर भी क्लिष्टता नहीं आई है --

समरस- समर - सकोच - बस -बिबस न ठिक ठहराइ।
फिरि फिरि उझकति, फिरि दुरति,दुरि दुरि उझकति आइ।।५२७।।

कहीं-कहीं तो कवि ने एक-एक दृश्य-खण्डों को एक-एक शव्दों के द्वारा

ही चित्रित कर देता है और उस समय उसकी प्रतिभा पर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है--

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु हीं सब बात ।।३२।।

लय-सौन्दर्य -- कवि कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिससे व्यंजना तो होती है है, साथ ही पदों में एक प्रकार की गूंज या लय भी उपस्थित हो जाता है । यह अनुप्राश के द्वारा मुख्य रूप में सिद्ध होता है । सतर्क कलाकार संगीतात्मकता के फेर में अनुभूति को नष्ट नहीं कर देते । स्वाभाविक रूप में ही जहां तक हो सकता है, वहां तक इसका विधान करते हैं । बिहारी में भी यह गुण पाया जाता है--

गड़े, बड़े छबि-छाक छकि, छिगुनी-छोर छुटैं न।
रहे सुरंग रंग रंगि उहीं नह-दी महदी नैन।।४४८।।

प्रसंगानुरूप अनुरणन्-नाद-सौन्दर्य -- कवि कभी-कभी ऐसे शब्दों का व्यवहार अपने छन्दों में करते हैं जिससे उस वर्णित वस्तु से उत्पन्न होने वाली ध्वनि के समान ही छन्द से भी ध्वनि निकलती है । जैसे किसी आभूषणका वर्णन करना हो तो कविऐसी परिस्थिति शब्दों के द्वारा उत्पन्न करते हैं कि उस आभूषण से उत्पन्न होने वाली ध्वनि के अनुरूप ही शब्दों सें ध्वनि निकलती है । गोस्वामी जी के निम्नलिखित छन्द में वैसी ही ध्वनि उपस्थित की गई है जिससे जैसी नूपुर की ध्वनि होती है ।

कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि ।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।

बिहारी ने भी इस विशिष्ट नाद-सौन्दर्य-सम्पन्न दोहों की रचना की है --

रनित भृंग-घंटावली, झरित दान मधु-नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज-समीरु ।।३८८।।

उपर्युक्त दोहे में ऐसे शब्दों का प्रयोग कवि ने किया है जिनसे घंटा-युक्त हाथी के चलने और वायु के संचरण से उत्पन्न ध्वनि के समान ध्वनि निकल रही है । इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे से भी पायल की ध्वनि गूंज रही है --

किय हाहलु चित-चाइ लगि, बजि पाइल तुब पाइ।
पुनि सुनि सुनि मुहूं-मधुरधुनि क्यौं न लालु ललचाइ।।२१२।।

जड़ता पर चेतना का आरोप -- इसमें जड़ या सूक्ष्म वस्तुओं का मानवाकार वर्णन करता है और यह विशेषरूप देने से उसमें एक प्रकार का चमत्कार आ जाता है । यह तो आजकल पाश्चात्य साहित्य की देन समझा जाता है लेकिन हमारे यहां बहुत प्राचीन काल से ही इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं । बिहारी ने भी कहीं-कहीं इसका प्रयोग किया है। प्रमाणस्वरूप निम्नलिखित दोहे देखे जा सकते हैं --

अरुनसरोरुह-कर-चरन , दृग -खंजन, मुख-चन्द ।
समै आइ सुंदरि सरद काहि न करति अनंद ।।४८७।।

स्वष्ट है कि यहां सरद ऋतु का सुन्दरी नायिका के रूप में कवि ने चित्रित किया ह । निम्नलिखित दोहे भी ऐसी ही हैं जिनमें सूक्ष्म एवं जड़ वस्तुओं को मानवीय रूप दिया गया है --

घन-घेरा छुटि गौ, हरषि चली चहूं दिसि राह ।
क्यौं सुचैनौ आइ जगु सरद-सूरनरनाह ।।४८५।।

क्यौं सबै जगु काम-बस , जीते जिते अजेइ ।
कुसुमसरहिं सर धनुष कर आहनु गहन न देइ।।४९५।।

चुवतु स्वेद मकरंद-कन , तरु-तरु-तर बिरमाइ।
आवतु दच्छिन देस तें थक्यौ बटोही बाइ ।।३९०।।

साम्य-सौन्दर्य

कवि जब किसी वस्तु का वर्णन करने लगता है तो वह उसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए वैसी ही किसी दूसरी वस्तु का उदाहरण सामने लाता है और इस लाई हुई वस्तु के समान ही उस वर्ण्य विषय को बताता है । इसमें विशेषता यह है कि जानी-पहचानी वस्तु के समान ही होने से वर्ण्य का स्वरूप

आसानी से (अनायास) प्रतिविम्बित हो जाता है । यह साम्य स्वरूपगत और धर्मगत दोनों प्रकार का होता है। गोचर के लिए तो गोचर: साम्य लाया ही जाता है लेकिन इस प्रक्रिया में कवि कभी-कभी गोचर के लिए अगोचर वस्तु के साम्य को प्रस्तुत करता है और कभी अगोचर के लिए गोचर को साम्य लाता है । दूसरे प्रकार कासाम्य आधुनिक कविता (छायावादी) भी एक विशिष्ट प्रवृत्ति है ।

गोचर के लिए गोचर साम्य --

नासा मोरि , नचाइ जे करी ककी की सौंह ।
काँटे सी कसकै ति हिय गड़ी कँटीली भौंह ।।४०६।।

यहां गोचर वक्र भौंह के लिए गोचर काँटे को प्रस्तुत किया गया है । लेकिन यहां साम्य प्रभाव में है स्वरूप में नहीं

लहलहाति तन तरु नई लचि लग लौं लफि जाइ।
लगै लांक लोइन - भरी लोइनु लेति लगाइ ।।५३२।।

अगोचर के लिए गोचर प्रस्तुत --

डीठिबरत बांधी अटनु, चढ़ि घावल न डरात ।
इतहिं उतहिं चित दुहुनु के नट लौं आवत जात ।।१६३।।

वर्ण साम्य --

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबन अंग।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता-रंग।।७०।।

नीकौ लसतु लिलार पर टीकौ जरितु जराइ ।
छबिहिं बढ़ावतु रबि मनौ ससि-मंडल में आइ।।१०५।।

सोनजुही सी जगमगति अंग अंग जोबन-जोति ।
सुरंग, कसूं भी कुंकुमी दुरंग देह-दुति होति।।१६०।।

विरोधगत-सौन्दर्य -- कवि वर्णन के सन्दर्भ में कभी-कभी ऐसी उक्तियों या शब्दों को रख देते है जिससे ऊपर से तो कथ्य की स्थिति में विरोध सा दिखाई देता है , लेकिन वास्तव मे विरोध होता नहीं है ।विरोधयुक्त अंश में एक अन्य

अर्थ भी निहित रहता है जिससे विरोध का शमन हो जाता है। पाठक पढ़ते समय पहले तो विरोध की स्थिति को देख कर चौंक उठता है, लेकिन जब उसे वास्तविकता का पता चलता है तो वह आश्चर्य-चकित और चमत्कृत हो जाता है । इसमें भावों को जगाने या पाठक को चौंकाने की एक अद्भुत शक्ति होती है --

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत, ज्यों ज्यों पियत अघाइ।
सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृषा बुझाइ ।।४१७।।

मोहन-मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सु चित-अंतर , तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ।।१६१।।

\+ \+

ज्यों ज्यों बूड़े श्याम रंग त्यों-त्यों उज्ज्वल होय ।

लागत कुटिल कटाच्छ-सर क्यों न होहिं बेहाल ।
कढ़ते जि हियहिं दुसाल करि , तऊ रहत नटसाल ।।३७५।।

वैसम्य-सौन्दर्य -- जहां कवि कारण और कार्य की असंगति देश और काल के व्यवधान से उपस्थित करते हैं, वहां एक प्रकार का चलत्कार उपस्थित हो जाता है और उक्ति में चमत्कार के कारण वक्रता आ जाती है । स्पष्ट रूप में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि कहीं कारण कहीं और वर्णित किया जाय और कार्य न होना दूसरी जगह चित्रित हो तो वहां कारण भी कार्य की भिन्न देशीयता के कारण चमत्कारमूलक सौन्दर्य उत्पन्न होता है । इस कथन के द्वारा भावों में गति उत्पन्न होती है ।

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन-हियैं , दई, नई, यह रीति।।३६३।।

जब कोई दो वस्तुएं उलझती हैं तो खींचने पर वे वस्तुएं ही टूटती हैं, अन्य नहीं। फिर जब उन्हें जोड़ा जाता है तो वे ही जुड़ती हैं और उन्हीं में गांठ भी उत्पन्न होती है। जहां कहीं कोई जोड़ होता है वहीं पर गांठ भी पड़ती है। लेकिन कवि एक ऐसी परिस्थिति का वर्णन करता है जिसमें उपर्युक्त बातें विपरीत रूप मे दिखाई पड़ती है । उसमें उलझती तो आखें हैं और टूटता है परिवार और

जोड़ने पर चतुरों के हृदय जुड़ते हैं तथा गांठ दुष्टों के हृदय मेंपड़ती है। और यह विचित्र परिस्थिति देखकर कवि विस्मय-विमुग्ध हो जाता है । यह स्पष्ट है कि यहां पर देशगत असंगतता का कथन किया गया है । निम्नलिखित दोहे भी ऐसे ही हैं --

दृगनु लगत, बेधत हियहिं , बिकल करत अंग आन ।
ए तेरे सब तें बिषम ईछन-तीछन बान ।।३४६।।

को जानै , ह्वै है कहा ; ब्रज उपजी अति आगि।
मन लागै नैननु लगै , चलै न मग लगि लागि ।।१५०।।

सन्केतात्मक सौन्दर्य -- जहां पर किसी ऐसे विषय का वर्णन किया जाय जो उस समय वहां उपस्थित न हो और उस वर्णन से किसी उपस्थित वस्तु के सम्बन्ध में किसी प्रकार की व्यंजना हो तो इस कथन-भंगिमा के द्वारा उक्ति में सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है । ऐसे बहुतसे वर्णन बिहारी में मिलते हैं --

स्वारथु , सुकृतु न , श्रमु बृथा; देखि, बिहंग, बिचारि।
बाज, पराऐं पानि परि तूं पच्छीनु न मारि ।।३००।।

यह दोहा राजा जयसिंह के सम्बन्ध में जो शाहजहां की ओर से हिन्दुओं के विरुद्ध लड़ रहे थे , कहा गया है । स्पष्ट है कि जो उपस्थित नहीं है उसके सम्बन्ध में वर्णन कर प्रस्तुत राजाजयसिंह पर बात घटाई गई है । इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे भी अन्योक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं --

अन्योक्ति-- गोधन, तूं हरष्यौ हियैं धरियक लेहि पुजाइ ।
समुझि परैगी सीस पर परत पसुनु के पाइ।।६६६।।

नहिं परागु , नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बंध्यौ , आगैं कौन हवाल।।३८।।

मोरचंद्रिका,स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमानु।
लखिबी पाइनु पर लुठति , सुनियतु राधा-मानु।।६७६।।

पुनरावृत्ति -- एक ही शब्द की पुनरावृत्ति कर देने से भी उक्ति में प्रभावशालिता आ जाती है। पुनरावृत्ति के कारण अर्थ नहीं बदलता है --

लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।३४७।।

चलतु घेरु घर घर , तऊ घरी न घर ठहराइ।
समुझि उहीं घर कौ चले, भूलि उहीं घर जाइ।।४६०।।

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत , ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ ।
सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृषा बुझाई।।४१७।।

अंग अंग छबि की लपट उपटति जाति अछेह ।
खरी पातरीऊ, तऊ लगै भरी सी देह ।।६६१।।

वक्रोक्ति -- इसमें कथ्य को वक्रता के साथ प्रस्तुत किया जाता है और इस वक्रता के कारण ही उक्ति में सौन्दर्य आ जाता है --

भूषन-भारु संभारिहै क्यौं इहिं तन सुकुमार ।
सूधे पाइ न धर परैं , सोभा हीं कैं भार।।३२२।।

इक भीजैं , चहलैं परैं , बूड़ैं , बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै बै - नै चढ़ती बार।।४६१।।

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यौं न सनेह गंभीर ।
को घटि , ए वृषभानुजा , वे हलधर के बीर।।६७७।।

छन्द-सौन्दर्य -- छंदों के कारण प्रवाह और नाद-सौन्दर्य उत्पन्न होता है साथ ही भाव व्यंजना में भी ये सहायक होते हैं। विशेष भाव के अनुरूप विशेष छन्द ही उपयुक्त होते हैं , इसका विस्तृत विवेचन छंदशास्त्रीय ग्रन्थों में मिलता है । बिहारी ने एक ऐसे छन्द को चुना है जिसका स्वरूप अत्यन्त छोटा है । पता नहीं उन्होंने केवल दोहे में ही क्यों रचना की जबकि उस समय तक सवैया वगैरह छन्द खूब मंज गये थे । दोहा बहुत प्राचीन काल से ही वीर एवं शृंगार सम्बन्धी ग्रन्थों के लिए

उपयोग में आता रहा है । अपभंश काल में ही बहुत मार्मिक दोहे दृष्टिगोचर होते हैं । हेमचन्द्र के व्याकरण में अत्यन्त उत्कृष्ट दोहे प्राप्त होते हैं । यह शृंगार, वीर , एवं भक्ति रसों के लिए उपयुक्त समझा जाता है । नीति की सूक्तियों को प्रवृत्ति के भी अनुकूल यह होता है । बिहारी ने शृंगारी दोहे सर्वाधिक लिखे हैं , दो-चार दोहे वीर रस के और इससे कुछ अधिक भक्ति रस के हैं । उन्होंने कुछ नीति सम्बन्धी दोहे लिखे हैं । उनके विषयों को देखते हुए यह ज्ञात होता है कि उनका छन्द का चुनाव कोई बुरा नहीं है और वे रसानुकूल हैं। इस छोटे से छन्द को लेकर बिहारी ने अपनी प्रतिभा से इतना गठित किया है कि उन्हें गागर में सागर भरने वाला कहा गया है । बिहारी के प्रसंग से दोहे का रूप अत्यन्त निखर उठा है ।

षष्ठ अध्याय

उ प सं हा र

उ प सं हा र

महाकवि बिहारी की सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टि बहुत व्यापक एवं सूक्ष्म अन्वेषिणी है । विचार की जिस सीमा पर आज के चिन्तक पहुंचे हैं , वहां बिहारी आज से तीन सौ वर्ष पूर्व ही पहुंच गए थे । लगता है , उन्होंने विषयगत तथा विषयीगत -- दोनों प्रकार के दृष्टिकोणों को समझा था । इसीलिए कदाचित् उन्होंने अपना समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जो आज के मूर्धन्य उदार विद्वानों के द्वारा प्रशंसित एवं सम्पुष्ट किया जा रहा है । यह उनकी प्रतिभा की विशिष्ठता का कुछ कम द्योतक है ?

जहां तक उनके रूप-सौन्दर्य का प्रश्न है, उन्होंने इस दिशा में बड़ी सूक्ष्मता एवं दक्षता का परिचय दिया है । उन्होंने शरीर के विभिन्न अवयवों -- मुख , दांत , नेत्र , अधर-ओष्ठ , कपोल, चिबुक, उरोज, कटि , जांघ , नितम्ब , एड़ी , अंगुलियों , पदतल आदि का विस्तृत वर्णन किया है । इन विभिन्न अवयवों के अलग-अलग वर्णन से यह विदित होता है कि उनकी दृष्टि में नख-शिख वर्णन की पूर्वपरम्परा अवश्य रही होगी । इन विभिन्न अंगों में उन्होंने सर्वाधिक वर्णन नेत्रों का किया है । कवि की दृष्टि उनके आकार-प्रकार से अधिक उनके वर्ण , दीप्ति, कान्ति आदि पर विशेष जमी दिखाई पड़ती है ।

इन विविध अंगों से उत्पन्न सौन्दर्य को और भी आकर्षक बनाने के लिए कवि ने आभूषणों एवं वस्त्रों का चित्रण भी सूक्ष्मता से किया है। आभूषणों के अन्तर्गत उसने सीस, टीका, नथ, बेसर का मोती, तरयौना, मुक्तावली , अंगूठी , पैर के छल्ले , अनवट , ताटंक , विछिया, किंकिनी , करधनी आदि तत्कालीन व्यवहार्य अलंकारों को स्थान दिया है । इनका वर्णन तो कवि ने किया है लेकिन कहीं - कहीं शारीरिक-सौन्दर्य के सामने उन्हें हृत-द्युति चित्रित किया है --

'दृग पग पौंछन को कियौ , भूषन पायन्दाज ।'

कवि ने इन आभूषणों के आकार , रंग और चमक आदि से उत्पन्न सौन्दर्य का चित्रण किया है ।

आभूषणों के अतिरिक्त उसने विविध रंग के वस्त्रों को सौन्दर्य-सम्पन्न चित्रित किया है । इनमें 'ज़री की ओढ़नी', 'आंगी', 'धोई हुई धोती', 'पांच तोले की साड़ी' आदि प्रमुख हैं । वह इनके विविध प्रकार के रंगों एवं झीनेपन के सौन्दर्य पर मुग्ध है ।

वस्त्र एवं आभूषणों के साथ ही स्निग्धता एवं सुगन्धि के लिए विविध प्रकार के अनुलेपों काप्रयोग भी किया जाता है । अत: रूप-सौन्दर्य के प्रसंग में इन्हें भी कवियों ने स्थान दिया है । बिहारी ने प्रसाधन के लिये प्रयुक्त होने वाले ऐसे द्रव्य-गंधों को भी रूपायित किया है । जिस तरह इन्होंने सहज अंग-कान्ति के सामने आभूषणों को पायन्दाज कहा है उसी तरह कहीं-कहीं अंगरागों को भी आरसी पर लगे 'उंसास' के समान बताया है --

'अंगराग अंगन लगे ज्यों आरसी उसास' ।

इस तरह हम देखते हैं कि बिहारी का रूप-सौन्दर्य चित्रण अपने में पूर्ण है और वे इस दिशा में पूर्ण सफल हैं । फिर भी, सौन्दर्य-चित्रण परंपरा के अधिक निकट हैं और इस दिशा मे वे चमत्कार प्रिय कवि के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं ।

बिहारी को सबसे अधिक सफलता अनुभावों के सौन्दर्यांकन में मिली है । इनके समान सफल एवं स्वाभाविक अनुभाव-चित्रण करने वाला कवि हिन्दी में शायद ही कोई हो । वे इसके द्वारा रसास्वादन कराने में अत्यन्त सफल हैं । इनकी 'सतसई' में शृंगार सम्बन्धी अनुभाव ही प्रमुख रूप से आए हैं क्योंकि शृंगार रस ही इनका मुख्य विषय है । यही कारण है कि इनकी कविता में विभिन्न स्थितियों की अनुभाव-मुद्राएं अपने आप सहज ढंग से प्राय: सर्वत्र उभरती गई हैं ।

शील इस कवि के लिए आन्तरिक सौन्दर्य है जो शील रूप में मानव के कर्मों में परिलक्षित होता है , किन्तु क्षेत्र-संकोच के कारण शील का वैविध्यपूर्ण मनोहारी स्वरूप इनकी कविता में नहीं प्रतिच्छायित हो सका है । हां , मानव के मधुर सम्बन्धों में पलने वाले प्रेमाश्रित शील के सौन्दर्य का कवि ने अवश्य विविध रति-चेष्टाओं से शृंगार किया है । स्त्री और पुरुष -दोनों का शील-सौन्दर्य इनकी कविता का उपजीव्य है।

जहां तक प्रकृति-कवि के चित्रण का प्रश्न है , हम उनकी कविता में उसके अनेक रूपों का दर्शन करते हैं ।ऐसा लगता है कि दरबारी होने तथा तत्कालीन युग-प्रवृत्ति से प्रभावित होने के कारण ही बिहारी ने उसके मनोरम रूप का खुली आंखों से निरीक्षण कम किया था । फलत: 'सतसई' में प्रकृति का भावादिप्त रूप ही अधिक दृष्टिगोचर होता है । लेकिन स्वतन्त्र प्राकृतिक दृश्यों का नितान्त अभाव नहीं है ।[२] युग से आगे बढ़कर जड़-प्रकृति पर चेतना का आरोप कर उसे मानवीय-सौन्दर्य से मांसल करते हैं । इस तरह बिहारी ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को अपनी कविता में स्थान दिया है । कहीं भादक माधुर्य है तो कहीं प्रभावपरक सौन्दर्य , कहीं मानवीय सौन्दर्य है तो कहीं गतिशील सौन्दर्य ।

इन सबों के अतिरिक्त बिहारी की अक्षय कीर्ति का जो सबसे प्रबल आधार है , वह है उनकी कला-चातुर्य । कवि इस दिशा में अत्यन्त कुशल शिल्पी के रूप में दृष्टिगोचर होता है ।बिहारी नागर थे । अत: उनका कला-विदग्ध होना स्वाभाविक है । पदों का सुष्ठु संगुम्फन , ललित पद-विन्यास भाव-वहन में पूर्ण समर्थ भाषा, अलंकारों का मंजुल सन्निवेश , विदग्धता , अर्थ-गम्भीरता तथा आश्चर्यजनक प्रसंगोद्भावना के लिए बिहारी की कीर्ति अक्षय रहेगी ।

इस तरह कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि बिहारी की दृष्टि जितनी ही सूक्ष्म दर्शिनी है उतनी ही पैनी भी और उसने जड़-चेतन समस्त उपादानों से सौन्दर्य का चयन किया है । बिहारी का जो सुन्दर है , वह रस-

सिक्त है । वह सौन्दर्य मंगल-विधायक है । ऊहात्मक और चमत्कारपूर्ण होते हुए भी सत्य से समन्वित , गत्यात्मक एवं सजीव है ।

माधुर्य एवं लावण्य दोनों का सम्यक् सुन्दर चित्रण उनमें विद्यमान है । समकालीन कवियों में इतना सरस सौन्दर्य केवल देव का है । इस क्षेत्र में बिहारी के प्रतिद्वन्द्वी केवल देव ही हैं । आधुनिक कवियों में प्रसाद का भोगवादी सौन्दर्य बिहारी के अधिक निकट है । पन्त की स्नेह-सिक्त सुन्दरता बिहारी में नहीं के बराबर है । मानवीय सौन्दर्य 'क्लेसिकल' होते हुए भी छायावादी कवियों के मानवीय सौन्दर्य से अधिक मांसल, आकर्षणपूर्ण, भव्य और अलंकृत है , किन्तु छायावाद ने जो प्रकृति को सजीवता और साकारता प्रदान की है , वह बिहारी नहीं कर सके हैं और वैसी परिस्थिति में सम्भव भी नहीं था ।

स्थायी साहित्य की दृष्टि से बिहारी ने चिरंतन सौन्दर्य का अंकन किया है और राधा एवं कृष्ण के रूप में उन्होंने सार्वभौम सौन्दर्य को रूपायित किया है । किन्तु ऐसी झांकियां अधिक नहीं हैं । मानव यदि सरस है, भोगवादी है और जब तक रहेगा तब तक बिहारी के सौन्दर्य-वर्णन, रूपमाधुर्य के चित्र, कविअंकन और अनुभाववर्णन उसे रस-विभोर करते रहेंगे ।

---o---

मुख्य सहायक ग्रन्थों की सूची

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि , भाग २
२. कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम्
३. कीट्स : एडिमिहअन
४. एस० के० रामास्वामी : इंडियन ऐस्थेटिक्स
५. जी० वी० प्लेखोनोव : आर्ट एंड सोशल लाइफ (१९५३)
६. जगन्नाथदास रत्नाकर : बिहारी-रत्नाकर
७. जयशंकर प्रसाद - कामायनी
८. टालसटाय : ह्वाट इज़ आर्ट
९. डुगल्स ऐंसिली : ऐस्थेटिक (१९२२)
१०. डब्ल्यू० नाइट : दि फिलासोफी आफ दि ब्यूटीफुल
११. पंण्डितराज जगन्नाथ : रसगंगाधर
१२. डा० फतेहसिंह : साहित्य और सौन्दर्य
१३. बनार्ड बांक्वेट : हिस्ट्री आफ एस्थेटिक
१४. मैथ्यु अर्नाल्ड : एस्से इन क्रिटिजिज़्म
१५. महेन्द्रनाथ सरकार : इस्टर्न लाइट्स
१६. माघ - : शिशुपालवधम्
१७. रवीन्द्रनाथ ठाकुर : साधना
१८. विल्डन कार : फिलासोफी आफ क्रोचे
१९. विनयमोहन शर्मा - : साहित्यावलोकन
२०. विश्वनाथ:साहित्य दर्पण
२१. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : बिहारी
२२. पं० शद्गुरुशरण अवस्थी : बुद्धितरंग
२३. समालेचक का सौन्दर्यशास्त्र अंक
२४. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव

२५. बाबू सम्पूर्णानन्द : चिद्विलास
२६. श्री हरवंश सिंह शास्त्री : सौन्दर्य-विज्ञान
२७. क्षेमेन्द्र : औचित्य विचारचर्चा

---o---